# वाधूलस्मृतिः

*विशदभूमिकया विविधाभिरनुक्रमणीभिश्च समलङ्कृतं*
*हिन्दीभाषानुवादयुतं समालोचनात्मकं संस्करणम्*

सम्पादकः

**डॉ. व्रजबिहारी चौबे**

***आचार्यः पूर्वनिदेशकश्च***

विश्वेश्वरानन्द- विश्वबन्धु-संस्कृत-भारतभारती-अनुशीलन-संस्थानम्
पञ्जाब विश्वविद्यालयः
होशियारपुरम्

**कात्यायन-वैदिक-साहित्य-प्रकाशनम्**

**होशियारपुरम् ( पंजाब )**

सम्पादकोऽनुवादकश्च—डॉ व्रजबिहारी चौबे

*प्रकाशक:*

कात्यायन- वैदिक- साहित्य-प्रकाशनम्

चतुर्वेद-निकेतनम्, जोधामलमार्ग:, गौतमनगरम्,

होशियारपुरम् (पञ्जाब)

पिन-146001



प्रथमसंस्करणम्-युगाब्द 5101, विक्रमसंवत् 2056 (ख्रीष्टाब्द 2000)

प्रतय: — 500

मूल्यम् — 80.00 रुप्यकाणि

*मुद्रक:*

मनूजा ऑफसेट वर्क्स,

जालन्धर

# VĀDHŪLA-SMṚTI

Critically edited with Hindi Translation, detailed Introduction and several Indices

By
Dr. BRAJ BIHARI CHAUBEY
Professor and Former Director
Vishveshvaranand Vishva Baṇdhu Institute of
Sanskrit and Indological studies
PANJAB UNIVERSITY, HOSHIARPUR

KATYAYAN VAIDIK SAHITYA PRAKASHAN
HOSHIARPUR

**Editor and translater**—Dr. B.B. Chaubey

***Publisher***

Katyayan Vaidik Sahitya Prakashan

Chaturveda Niketan, Gautam Nagar

Jodhamal Road

HOSHIARPUR(Punjab)

Pin- 146001



***First Edition*** — Yugābda 5101, Vikram samvat 2056 (2000 AD)

***Copies Printed*** — 500

***Price*** — Rs 80

***Printer***

Manooja offset works

Jalandhar (Punjab)

# वाधूलस्मृतिः

## विषयसूची

पृष्ठ

# संक्षेप सूची

# *(Abbreviations)*

| | | |
|---|---|---|
| आप मपा | – | आपस्तम्बमन्त्रपाठ |
| ऋवे | – | ऋग्वेद |
| तैआ | – | तैत्तिरीय आरण्यक |
| तैसं | – | तैत्तिरीय संहिता |
| मैसं | – | मैत्रायणी संहिता |
| वासं | – | वाजसनेयि माध्यन्दिन संहिता |
| Āpmp | – | Āpastamba Mantrapāṭha |
| ṚV | – | Ṛgveda |
| Om | – | omit |
| TĀ | – | Taittirīya Āraṇyaka |
| TS | – | Taittirīya Saṁhitā |
| M | – | Transcript of MS No. R 2180 Government Oriental Manuscript Library, Madras. |
| Manu | – | Manusmṛti |
| MS | – | Maitrāyaṇi Saṁhitā |
| VS | – | Vājasaneyi Mādhyandina Saṁhitā |
| SmS | – | Printed edition of Vādhūla-Smṛti in Smṛti-Sandarbha (published by M/S Nag Publishers, Delhi). |

# भूमिका

सन् 1993 में वाधूलश्रौतसूत्र का सम्पादन कर चुकने के पश्चात् मन में यह विचार आया कि वाधूलशाखा के जो अन्य ग्रन्थ अभी हस्तलेख रूप में पड़े हैं, उनका एक-एक करके सम्पादन करूं और सबको प्रकाश में लाऊं। वाधूलशाखा से संबद्ध जो भी हस्तलेख थे, वे प्रायः गवर्नमेण्ट ओरिएण्टल मैनुस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास तथा ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट एण्ड मैनुस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, त्रिवेन्द्रम में ही उपलब्ध थे। वाधूलगृह्यकल्पव्याख्या का हस्तलेख जिसमें गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्र तथा अन्वाख्यान-भाग भी सम्मिलित था, उसकी छायाप्रति मैंने मद्रास से मंगा रखी थी। किन्तु वह पूर्ण नहीं थी। श्रौतसूत्र-भाग तो पूरा था, किन्तु अन्वाख्यान-भाग पूरा नहीं था। उसका शेष द्वितीय भाग के रूप में अलग से था। उसको प्राप्त करना मुझे अभीष्ट था, क्योंकि अन्वाख्यान-भाग को मैं पहले पूरा करना चाहता था। संयोगवश 11-13 जनवरी, 1995 को इन्स्टीट्यूट आफ एशियन स्टडीज़, मद्रास के तत्त्वावधान में 'भारतीय भाषाओं में ताड़पत्र तथा अन्य हस्तलेख' (Palm-leaf and other manuscripts in Indian languages) विषय पर आयोजित एक त्रिदिवसीय अखिल भारतीय संगोष्ठी में मद्रास जाना पड़ा। मद्रास विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग में मेरे मित्र डॉ. सिनीरुद्ध दास तथा डॉ. रमाबाई थीं जिनके प्रयास से मैं गवर्नमेण्ट ओरिएण्टल मैनुस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास में वाधूलशाखा से सम्बद्ध जितने हस्तलेख थे, उन सब को देखा। अपने प्रकल्प को पूर्ण करने के लिए उन हस्तलेखों की छायाप्रति प्राप्त करने की इच्छा की। उन हस्तलेखों में ग्रन्थ-लिपि में 'वाधूलस्मृति' का भी एक हस्तलेख (आर.2180) था। मैंने उसका देवनागरी-लिप्यन्तर प्राप्त करने की प्रार्थना की। तत्काल तो उसकी प्राप्ति नहीं हो सकी, किन्तु दो माह के बाद उसका देवनागरी लिप्यन्तर तथा अन्य हस्तलेखों की छायाप्रतियाँ डाक द्वारा मुझे प्राप्त हो गईं। उस समय मैंने वाधूल-अन्वाख्यान के पाठ-मिलान का ही कार्य शुरू किया, वाधूलस्मृति का सम्पादन-कार्य तत्काल आरम्भ नहीं कर सका।

इसी बीच डॉ. पुरुषोत्तमलाल चतुर्वेदी, कुलपति, महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर के विशेष आग्रह पर बिश्वविद्यालय में वैदिक अध्ययन एवं शोध विभाग प्रारम्भ करने के लिए विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में एक वर्ष के लिए 1 मई, 1998 को वहां कार्यभार संभाला। 'वाधूलस्मृति' तथा 'वाधूलगृह्यागमवृत्तिरहस्य' के हस्तलेख भी, जिन्हें मैंने मद्रास से मंगाया था, अपने साथ मैं अजमेर ले गया था। इन दोनों ग्रन्थों के सम्पादन-कार्य के लिए पर्याप्त समय मिला और वहीं पर रहते मैंने इस कार्य को पूर्ण किया। अजमेर विश्वविद्यालय में अध्ययन-अध्यापन तथा सम्पूर्ण कार्यालयीय कार्य राष्ट्रभाषा हिन्दी में सम्पादित करने की कुलपति डॉ. चतुर्वेदी जी की अभिरुचि से प्रभावित होकर मैने 'वाधूलस्मृति' का हिन्दी अनुवाद भी कर दिया, ताकि अधिक लोग इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ से लाभान्वित हो सकें।

सन् 1988 में नाग पब्लिशर्स, दिल्ली ने 'स्मृति-सन्दर्भ' के नाम से 56 स्मृतियों का एक संग्रह 6 भागों में प्रकाशित किया था। इस संग्रह में वस्तुतः 52 ही स्मृतिग्रन्थ थे जिनमें चार 'संहिता' नाम से थे— अत्रिसंहिता, औशनससंहिता, लघुव्याससंहिता तथा ब्रह्मोक्तयाज्ञवल्क्यसंहिता। इस स्मृति-सन्दर्भ में 46वें क्रम पर वाधूलस्मृति भी संगृहीत थी। इस वाधूलस्मृति का सम्पादन किस हस्तेलख के आधार पर किया गया, इसका उल्लेख बहां कहीं नहीं किया गया है और न ही उसका कोई पाठान्तर दिया गया है। मैंने मद्रास-हस्तलेख के साथ जब पाठ-मिलान किया, तो कई स्थलों पर दोनों में पाठान्तर दिखाई पड़ा। पाठान्तर का होना स्वाभाविक है। हस्तलेख तथा स्मृति-सन्दर्भ में प्रकाशित वाधूलस्मृति में जो मुख्य दोष था, वह श्लोकों के स्वरूप के विषय में था। श्लोक में पूर्वार्ध के बाद एक दण्ड तथा उत्तरार्ध के बाद दो दण्ड लगाया जाता है। हस्तलेख में इस नियम का पूर्णतया पालन नहीं था। कहीं-कहीं उत्तरार्ध के बाद भी एक दण्ड ही लगाया गया था। इस कारण एक श्लोक का पूर्वार्ध पूर्व श्लोक का उत्तरार्ध बन गया था। इसमें कई श्लोक मनुस्मृति से उद्‌धृत हैं। ऐसा देखने में आया कि मनुस्मृति के एक सर्वमान्य श्लोक का पूर्वार्ध पूर्व श्लोक का उत्तरार्ध है तथा उत्तरार्ध अगले श्लोक का पूर्वार्ध है। इस प्रकार एक सर्वमान्य श्लोक के पूर्वार्ध को पूर्व श्लोक का उत्तरार्ध बनाना तथा उत्तरार्ध को अगले श्लोक का पूर्वार्ध बनाना उचित नहीं। ऐसा नहीं कि स्मृतिकार ने ऐसा किया है। यह सब लिपिक का प्रमाद है जिसका अर्थबोध के साथ सम्बन्ध नहीं। ग्रन्थ-सम्पादन जगत् में

यह सूक्ति प्रसिद्ध है- 'विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्'। जिस प्रकार पद में एक वर्ण का पाठान्तर हो जाने से सम्पूर्ण भाव बदल जाता है, उसी प्रकार श्लोक के पादावसान-नियम के प्रमाद से श्लोक का भाव बदल जाता है। किसी श्लोक के पूर्वार्ध को पूर्व श्लोक का उत्तरार्ध तथा उत्तरार्ध को अगले श्लोक का पूर्वार्ध मानने के प्रमाद का एक कारण यह भी है कि कभी-2 एक भाव को मूल में दो पंक्तियों में बद्ध न कर तीन पंक्तियों में बद्ध किया गया होता है। ऐसी स्थिति में लिपिक पूर्व दो पंक्तियों को तो एक पूर्ण श्लोक मान लेता है, किन्तु तीसरी पंक्ति को अगले श्लोक की पूर्व पंक्ति के साथ मिलाकर एक श्लोक मान लेता है। यहीं पर वह श्लोक अर्थ की दृष्टि से खण्डित हो जाता है। कभी-कभी लिपिक के द्वारा श्लोक की एक पंक्ति छूट जाती है। वह छूटी पंक्ति श्लोक के पूर्वार्ध की भी हो सकती है और उत्तरार्ध की भी। ऐसी स्थिति में श्लोक की अवशिष्ट एक पंक्ति अगले श्लोक की पूर्व पंक्ति के रूप में जुड़ जाती है और आगे सभी श्लोकों के पूर्वार्ध-उत्तरार्ध रूप को बिगाड़ देती है। पुराणों, स्मृतियों तथा इस प्रकार के अन्य ग्रन्थों के प्रचलित संस्करणों में यह दोष प्रायः दिखाई पड़ता है। इसलिए यह एक कुशल सम्पादक का कार्य बनता है कि वह अर्थ के आधार पर श्लोक के पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध के सम्बन्ध को जानकर पूर्वार्ध-समाप्ति पर एक दण्ड तथा उत्तरार्ध-समाप्ति पर दो दण्ड का चिह्न लगावे, ताकि श्लोक के दोनों अर्धों का सम्बन्ध बना रहे। स्मृति-सन्दर्भ में प्रकाशित वाधूलस्मृति में अनेक स्थलों पर श्लोक का पूर्वार्ध पूर्व श्लोक का उत्तरार्ध तथा उत्तरार्ध अगले श्लोक का पूर्वार्ध बन गया है। इससे स्मृति-सन्दर्भ की श्लोकानुक्रमणी प्रभावित हुई है। मूल श्लोक का प्रतीक उसमें नहीं मिलता, क्योंकि उसे श्लोक का उत्तरार्ध मानकर उसमें समाविष्ट नहीं किया गया है। वाधूलस्मृति के प्रस्तुत संस्करण में हमने इस तथ्य का विशेष रूप से ध्यान रखा है कि श्लोक का पूर्वार्ध-उत्तरार्ध अर्थ की दृष्टि से परस्पर सम्बद्ध हो। यदि एक भाव तीन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है, तो दो पंक्तियों को एक श्लोक तथा तीसरी पंक्ति को द्विपदात्मक श्लोक मानकर उनकी अलग श्लोक-संख्या हमने दी है। इससे अग्रिम श्लोक उसमें प्रतिपादित भाव के खण्डित होने के दोष से मुक्त है। इस प्रकार प्रस्तुत संस्करण में 15 श्लोक द्विपदात्मक हैं। इसी कारण पूर्वप्रकाशित वाधूलस्मृति की श्लोक-संख्या से वर्तमान संस्करण की श्लोक-संख्या में अन्तर है। प्रस्तुत संस्करण में श्लोक-संख्या 233 है; जबकि स्मृति-सन्दर्भस्थ वाधूलस्मृति में 224 है।

## वाधूलस्मृति का रचयिता

जितनी स्मृतियां आज उपलब्ध हैं, उनके शीर्षक के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि जिन नामों से ये विख्यात हैं, वे ही उन स्मृतियों के रचयिता हैं। इस प्रकार मनु, नारद, अत्रि, विष्णु, दक्ष, शातातप, पराशर, हारीत, याज्ञवल्क्य, आपस्तम्ब, शङ्ख, लिखित, वसिष्ठ, उशनस्, बृहस्पति, व्यास, देवल, प्रजापति,आश्वलायन, बौधायन, गौतम, यम, अरुण, पुलस्त्य, बुध,काश्यप, व्याघ्रपाद, कपिल, विश्वामित्र, लोहित, नारायण, शाण्डिल्य, कण्व, दाल्भ्य अङ्गिरस्, भारद्वाज, मार्कण्डेय, लौगाक्षि, वाधूल आदि इन-इन नामों से ख्यात स्मृतियों के प्रणेता हैं। इन स्मृतिकारों के नामों को देखने से मालूम होता है कि इनमें से कुछ पौराणिक त्रिदेव से सम्बद्ध हैं, जैसे विष्णु, प्रजापति, नारायण आदि, कुछ वैदिक ऋषियों से सम्बन्द्ध हैं, जैसे अत्रि, पराशर, वशिष्ठ, उशनस्, बृहस्पति, विश्वामित्र, कण्व, भरद्वाज आदि, कुछ वैदिक शाखासंहिता-प्रवचनकारों से सम्बन्द्ध हैं, जैसे— व्यास, याज्ञवल्क्य, शाण्डिल्य, आश्वलायन, बौधायन आदि, कुछ उपनिषत्कालीन ऋषि-आचार्यों से सम्बद्ध हैं,जैसे अरुण, दाल्भ्य, अङ्गिरा, कुछ धर्मशास्त्रों से सम्बन्द्ध हैं जैसे— मनु, मार्कण्डेय, देवल लौगाक्षि। किन्तु ये स्मृतियों के प्रणेता नहीं हो सकते, क्योंकि ये अत्यन्त प्राचीन ऋषि तथा आचार्य हैं और स्मृतियां अर्वाचीन हैं। कल्पसूत्र के अन्तर्गत जो धर्मसूत्र हैं, वे धर्मशास्त्र के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। धर्मसूत्रों का भी सम्बन्ध प्रणेता के रूप में जिन आचार्यों के साथ जुड़ा हुआ है, वे भी उन धर्मसूत्रों के मूल रचयिता नहीं। वे वस्तुतः उन आचार्यों के शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा संकलित किये गये हैं। वैदिक शाखा-चरणों की यह विशेषता थी कि उनमें जो भी ग्रन्थ प्रणीत या संकलित होता था,चाहे वह शिष्य-प्रशिष्यों की लम्बी परम्परा में बहुत बाद का ही क्यों न हो, उस शाखा-प्रवर्तक आचार्य के नाम से ही प्रसिद्ध होता था। इस प्रकार याज्ञवल्क्य जो शुक्लयजुर्वेद-संहिता के प्रवचनकर्ता हैं, आश्वलायन जो ऋग्वेद की आश्वलायनशाखा के प्रवचनकर्ता हैं, आचार्य वाधूल जो कृष्णयजुर्वेद के अन्तर्गत वाधूलशाखा के प्रवचनकर्ता हैं, स्मृतियों के रचयिता कैसे हो सकते हैं? इसलिए यही मानना अधिक समीचीन और युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि प्राचीन ऋषियों, शाखाप्रवर्तक आचार्यों, कल्पसूत्रों के प्रणेताओं, ब्राह्मणों तथा कल्पसूत्रों में उद्धृत आचार्यों के नाम से ही परवर्ती काल में स्मृतियों का प्रणयन हुआ। इन स्मृतिकारों ने अपने व्यक्तित्व को उद्घाटित न करते हुए उन्हीं प्राचीन ऋषियों या

आचार्यों के नामों के साथ अपने द्वारा संकलित स्मृति-ग्रन्थों का कर्तृत्व दिखाने के लिये ग्रन्थारम्भ में ही प्रस्तावना के रूप में इस बात का उल्लेख किया कि ऋषियों ने मुनियों में श्रेष्ठ अमुक मुनि के पास जाकर नित्य-नैमित्तिक, वर्णाश्रम, प्रायश्चित्त, आचार आदि विषयक विविध कर्मों के विषय में जानने की जिज्ञासा की और उस मुनिश्रेष्ठ ने ऋषियों को तदनुसार आचार-धर्म का उपदेश किया। इस प्रकार जिस मुनि का नाम प्रवनकर्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया, वही उस स्मृति का रचयिता मान लिया गया। इस प्रकार स्मृति-ग्रन्थों के प्रणयन में मूल संकलयिताओं ने अपना व्यक्तित्व सदा प्रच्छन्न रखा। इसलिये किसी भी स्मृति के विषय में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वह स्मृति मूलतः किस आचार्य के द्वारा लिखी गई।

जो बात सभी स्मृतियों के रचयिताओं के विषय में लागू होती है वही बात वाधूलस्मृति के प्रवचनकर्ता के विषय में भी लागू होती है। इसमें प्रारम्भ में ही इस बात का उल्लेख किया गया है कि अपने आसन पर विराजमान वाधूल मुनि के पास जाकर महर्षियों ने उनका सम्मान करके ब्राह्मणों के आचार-धर्म के विषय में उनसे जानने की जिज्ञासा की। मुनियों में श्रेष्ठ वाधूल ने महर्षियों को उपदेश किया। वाधूल मुनि को 'मुनिशार्दूल' तथा 'धर्मवित्' कहा गया है। वाधूल मुनि का उल्लेख केवल प्रथम श्लोक में ही हुआ है। अन्य किसी स्थल पर नहीं। वस्तुतः वाधूल एक शाखा-प्रवर्तक प्राचीन आचार्य हैं। 'वाधूल-अन्वाख्यान,' 'वाधूलश्रौतप्रयोगक्लृप्ति' 'वाधूलगृह्यागमवृत्तिरहस्य' आदि वाधूलशाखीय ग्रन्थों में उनका मत प्रमाणरूप में आदर के साथ उद्धृत किया गया है। वाधूलश्रौतसूत्र के व्याख्याकार आचार्य आर्यदास ने अपने भाष्य में आचार्य कहकर उनका अभिमत जगह-जगह पर उद्धृत किया है। कल्पसूत्रकारों में वाधूल सबसे प्राचीन आचार्य हैं। बौधायन ने अपने गोत्रप्रवर में वाधूल को गोत्रप्रवरकार ऋषि के रूप में उद्धृत किया है। आश्वलायन ने अपने श्रौतसूत्र में वाधूल का एक गोत्र के रूप में उल्लेख किया है (आश्व. श्रौसू. 12.10.8)। शिवश्रोण ने अपने 'प्रयोगक्लृप्ति' नाम ग्रन्थ के प्रारम्भ में एक श्लोक[1] दिया है जिसमें आपस्तम्ब को वाधूल का प्रशिष्य कहा गया है। 'वाधूलस्मृति' में एक

---

1. आपस्तम्बः प्रशिष्योऽभूद् यस्य वाधूलकस्य तु।
अग्निवेश्यगुरुः सोऽयमृषिरस्मानिहावतु॥ (प्रयोगक्लृप्ति, हस्त. मद्रास हस्तलेख सं. 923, पृ. 377)

जगह आपस्तम्ब के मत को उद्धृत किया गया है जो वाधूलों के मत से भिन्न है। आपस्तम्ब का यहां उल्लेख यह प्रमाणित करता है कि आपस्तम्ब वाधूलस्मृति से प्राचीन है। इसलिए वर्तमान वाधूलस्मृति शाखाप्रवचनकार वाधूल की कृति नहीं हो सकती; क्योंकि वाधूल आपस्तम्ब से पूर्ववर्ती है। इसलिये यह मानना अधिक समीचीन है कि यहा वाधूलस्मृतिकार ने वाधूल-परम्परा को ही अधिमान देकर अपने व्यक्तित्व को प्रच्छन्न रखा है।

वाधूलस्मृति का वाधूल-परम्परा से केवल नाम का ही सम्बन्ध है, या इसमें या अन्यत्र इसके पोषक अन्य प्रमाण भी मिलते हैं ? वाधूल कृष्णयजुर्वेदीय परम्परा के ही अन्तर्गत एक शाखाप्रवर्तक आचार्य हैं। वाधूलस्मृति में स्नान आचमन, प्रायश्चित्त आदि कर्मों में वैदिक मन्त्रों का विनियोग बताया गया है। 'हिरण्यशृङ्गम्' 'सुमित्रा' (श्लो. 21) 'दुर्मित्रा', 'योऽस्मान् द्वेष्टि' (श्लो. 79), 'यं च वयं द्विष्मः' (श्लो. 80) 'नमोऽग्नये', 'यदपाम्'(श्लो. 81), 'अत्याशनाद्' (श्लो.82), 'इमं में गङ्गे' 'आपो अस्मान्' (श्लो. 85), 'आपो हि ष्ठा' (श्लो-86), 'एष भूतस्य' (श्लो. 88), आर्द्रं ज्वलति', 'अकार्यकार्य' (श्लो. 89), 'तद्विष्णोः' (श्लो.90) 'तृप्यत' (श्लो. 92) ये सभी मन्त्र कृष्णयजुर्वेदीय परम्परा के हैं। ये सभी मन्त्र तैत्तिरीय आरण्यक में उपलब्ध होते हैं। इससे यह बात पुष्ट होती है कि वाधूलस्मृति का सम्बन्ध कृष्णयजुर्वेदीय परम्परा से है।

वाधूलगृह्यागमवृत्तिरहस्य वाधूल-परम्परा का एक स्मार्त ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के प्रणेता संगमग्रामवासी आचार्य नारायण मिश्र हैं। इस ग्रन्थ में वाधूलस्मृति के कई श्लोक कहीं पूर्णरूप से ज्यों के त्यों तथा कहीं अल्प पाठान्तर के साथ मिलते हैं। प्रश्न यहां यह उठता है कि क्या वाधूलस्मृति के श्लोक वाधूलगृह्यागमवृत्तिरहस्य से लिये गये हैं या वाधूलगृह्यागमवृत्तिरहस्य में वाधूलस्मृति से ग्रहण किये गये हैं। वाधूलगृह्यागमवृत्तिरहस्य वाधूलस्मूति से प्राचीन प्रतीत होता है। इसलिए संभव है कि वहीं से वाधूलस्मृति ने ग्रहण किये हों। किन्तु इस विषय में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

वाधूलस्मृति में आत्मारूढ़ व्यक्ति के अग्नि-विनाश की चर्चा की गई है। आहिताग्नि व्यक्ति प्रवास पर जाते समय अपने आधान किये गये अग्नि को अपने में आरोपित करता है। आधान किये गये अग्नि को अपने में आरोपित करने वाले

व्यक्ति के लिये 'आत्मारूढ' शब्द का प्रयोग किया गया है। वाधूलशाखी यह मानते हैं कि आत्मारूढ़ व्यक्ति को जल में स्नान नहीं करना चाहिये, पतितादिकों से बाचचीत नहीं करनी चाहिए तथा काममोहित होकर ऋतुकाल के अतिरिक्त स्त्री-समागम भी नहीं करना चाहिए। यदि वह ऐसा करता है, तो उसकी आत्मारोपित अग्नि विनष्ट हो जाती है(श्लो. 150)। किन्तु आपस्तम्बशाखी इन अवस्थाओं में भी आत्मारोपित अग्नि का विनाश नहीं मानते। उनके मत में आत्मारूढ़ व्यक्ति सदा पवित्र होता है (श्लो. 151)। वाधूलस्मृति में आत्मारूढ़ व्यक्ति की तीन अवस्थाओं में अग्निविनाश की जो बात कही गई है, वह बाधूल-अन्वाख्यान से ग्रहण की गई है। वाधूल-अन्वाख्यान में भी आत्मसमारूढ़ के आचार-नियमों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि आत्मसमारूढ़ व्यक्ति जल में निमज्जन न करे, मैथुन का आचरण न करे तथा चण्डालों के साथ संभाषण न करे।[1] वाधूल-अन्बाख्यान निश्चित ही वाधूल-परम्परा का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है और वाधूल श्रौतसूत्र की तरह स्वयं आचार्य वाधूल के द्वारा प्रवचन किया गया है। वाधूल-अन्बाख्यान से आत्मसमारूढ़ आचार नियम ग्रहण करने के कारण इसमें संदेह नहीं कि वाधूलस्मृति वाधूल-परम्परा से सम्बद्ध है।

**वाधूलस्मृति की प्रामाणिकता-**

प्राचीन स्मृतियों की सूची में जिन को परिगणित किया जाता है वे स्मृतियां हैं— 1. मनु, 2. याज्ञल्क्य, 3. अग्रि, 4. विष्णु, 5. हारीत, 6. उशनस् , 7. अङ्गिरा, 8. यम, 9. कात्यायन, 10. बृहस्पति, 11. पाराशर, 12. व्यास, 13. दक्ष, 14. गौतम, 15. वसिष्ठ, 16. नारद, 17. भृगु तथा 18. अङ्गिरा। इस सूची में वाधूलस्मृति परिगणित नहीं। अल्बेरुनी ने जिन 26 स्मृतियों का उल्लेख किया है उसमें भी वाधूलस्मृति का नाम नहीं। 13वीं सदी के प्रसिद्ध धर्मशास्त्र के विद्वान् देवण्णभट्ट ने 'स्मृतिचन्द्रिका' नामक विशाल धर्मशास्त्र ग्रन्थ का प्रणयन किया जिसमें अपने से पूर्व अनेक स्मृतिकारों का उन्होंने उल्लेख किया है और उनके वचन उद्धृत किये हैं। उस 'स्मृतिचन्द्रिका' में वाधूलस्मृति के बहुत से श्लोक उद्धृत हुए हैं; किन्तु वे वाधूल के नाम से न होकर यम,भानु, जावालि, शंख, शातातप, व्याघ्रपाद, दक्ष, मार्कण्डेय, याज्ञवल्क्य, देवल, भारद्वाज, हारीत, विष्णु,

---

1. अथात्मसमारूढेषु 'नाप्सु निमज्ज्यान्न मैथुनं व्रजेन्न चण्डालैः सह संभाषेत। वाधूल-अन्वाख्यानम् 6.15.8.

पैठीनसि, शौनक, पराशर, उशना, पुलस्त्य, वृद्ध मनु, मनु, व्यास आदि के नामों से उद्धृत हैं। ऐसी स्थिति में क्या यह मान लिया जाये कि वाधूलस्मृति नामक कोई ग्रन्थ उस समय नहीं था और वाधूलस्मृति के ये श्लोक मूल रूप से उन्हीं स्मृतियों के हैं। डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे ने पांच भागों में जो अपना 'धर्मशास्त्र का इतिहास' लिखा, उसमें भी उन्होंने कहीं वाधूलस्मृति का उल्लेख नहीं किया, वाधूलशाखीय 'वाधूलकल्पागमवृत्तिरहस्य' का उल्लेख तो उन्होंने किया। किन्तु किसी रचना का उल्लेख न होने से उसकी सत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसमें सन्देह नहीं कि अन्य स्मृतियों के कुछ श्लोक साक्षात् या पाठान्तर के साथ वाधूलस्मृति में मिलते हैं; किन्तु इसके सभी श्लोक अन्य से गृहीत हैं, ऐसी बात नहीं। वाधूलस्मृति के स्वतन्त्र हस्तलेख उपलब्ध होने से उसकी सत्ता में अविश्वास नहीं किया जा सकता।

## वाधूलस्मृति का प्रतिपाद्य विषय

वाधूलस्मृति एक लघु स्मृति है। इसमें कुल 233 श्लोक है। इसमें केवल गृहस्थ ब्राह्मण के ब्राह्ममुहूर्त से लेकर सायं सन्ध्यापर्यन्त नित्य तथा नैमित्तिक कर्मों का विधान है। ब्राह्म मुहूर्त में उठकर हाथ-पैर धोकर हरिस्मरण करना चाहिए। प्रातः तथा सन्ध्या दोनों समय विण्मूत्र का परित्याग करते समय यज्ञोपवीत को दक्षिण कान के ऊपर लपेटना चाहिए तथा सिर को वस्त्र से आच्छादित रखना चाहिए। दिन में विण्मूत्र-विसर्ग करते समय उत्तर की ओर तथा रात्रि में दक्षिण की ओर मुख होना चाहिए, क्योंकि सूर्य उस समय सन्मुख नहीं होता। शौच दो प्रकार का होता है- एक, बाह्यशौच और दूसरा आभ्यन्तर। बाह्य शुद्धि तो मिट्टी और जल से होती है, किन्तु आभ्यन्तर शुचिता भावना से आती है। मन की पवित्रता ही आभ्यन्तर शुचिता है। ब्राह्मण के लिए शुचिता अनिवार्य है, क्योंकि यदि वह शौचाचार से रहित है, तो उसकी समस्त क्रियायें निष्फल हो जाती हैं। आभ्यन्तर शुचिता के लिए ही आचमन का विधान है। घुटनों को अन्दर करके पवित्र स्थान पर बैठकर उत्तर या पूर्व की ओर मुख करके हाथ के तीर्थभाग (अङ्गुष्ठ-मूलभाग) से आचमन करना चाहिए। आचमन में हाथ पर जल की मात्रा उतनी होनी चाहिए, जितने जल में उड़द(माष) का दाना डूब जाये। आचमन करते समय अङ्गुष्ठ और कनिष्ठिका को बाहर की ओर खुली रखकर शेष अङ्गुलियों को अन्दर की ओर झुकाये रखे। आचमन से पूर्व यज्ञोपवीतधारण किया हुआ, शिखाबन्धन किया हुआ तथा हाथ में कुश लिया

हुआ होना चाहिए। हाथ-पैर धोकर तथा मुख को जल से प्रक्षालित कर पूर्व की ओर मुख करके दातुन से दन्तधावन करे। दन्तधावन का मन्त्र है-

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो धेहि वनस्पते॥ (श्लो.35)

दन्तधावन के बाद स्नान का विधान है। स्नान दो प्रकार का है- नित्य तथा नैमित्तिक। नैमित्तिक स्नान विशेष परिस्थितियों में विहित है। नित्य स्नान प्रातः आचमन करके विधिपूर्वक विण्मूत्रशौच तथा दन्तधावन के बाद होता है। स्नान के बाद देव, ऋषि तथा पितरों का आचमनपूर्व तर्पण करना चाहिये। यदि जल में आचमन, तर्पण तथा जप करे, तो गीला वस्त्र धारण किये ही करे; किन्तु यदि जल से बाहर करे, तो सूखा वस्त्र धारण करके करे। जल में पितृतर्पण बिना वस्त्र निचोड़े ही करे। जल में देवताओं का तर्पण पूर्व की ओर मुख करके, ऋषियों का तर्पण उत्तर की ओर मुख करके तथा पितरों का तर्पण दक्षिण की ओर मुख करके करे। स्नान ब्राह्मण के लिए अनिवार्य है। बिना स्नान किये वह किसी कर्म के योग्य नहीं। यदि वह कोई कर्म करता है, तो वह निष्फल होता है। ब्राह्ममुहूर्त में उषःकाल से पूर्व स्नान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। जन्मनक्षत्र में, वैधृतयोग में, पुष्यनक्षत्र में, व्यतीपात में, संक्रान्ति में अमावस्या में नदी स्नान अवश्य करे। स्नान किये बिना उसको कभी भोजन नहीं करना चाहिए। ब्राह्मण के लिये स्नान का मतलब जलस्नान या डुबकी लगाना मात्र ही नहीं है। स्नान के पांच अंग हैं— संकल्प, पुरुषसूक्त का पाठ, मार्जन, अघमर्षणसूक्त का जप तथा देव एवं ऋषियों का तर्पण। स्नान करते समय

'इमं में गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्णिया।
असिक्निया मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जिकीये शृणुह्या सुषोमया'॥

इस वैदिक मन्त्र के अतिरिक्त निम्न स्मार्त मन्त्र के भी उच्चारण का विधान वाधूलस्मृति करती है-

आवाहयामि त्वां देवि स्नानार्थमिह सुन्दरि।
एहि गङ्गे नमस्तुभ्यं सर्वतीर्थसमन्विते॥ (श्लोक. 84)

ब्राह्मण के लिये प्रतिदिन तीन बार-प्रातः, दोपहर तथा सायंकाल-सन्ध्या करना अनिवार्य हैं। ब्राह्ममुहूर्त में प्रातःकालीन तारा के प्रकाश से प्रारम्भ कर

सूर्य के उदय होने से पूर्व तक प्रातःसन्ध्या का समय है। इसी प्रकार सूर्य के आधा अस्त होने के समय सायंसन्ध्या करे। मध्याह्न के समय माध्यन्दिनसन्ध्या करे। प्रातःसन्ध्या पहले वस्त्र धोकर करे तथा मध्याह्न की सन्ध्या करने के बाद वस्त्र निचोड़े। जो ब्राह्मण सूर्योदय से पूर्व तथा सूर्यास्त से पूर्व सन्ध्या नहीं करता, वह ब्राह्मणत्व से च्युत हो जाता है। वस्तुतः एक ही सन्ध्या कालभेद से तीन नामों से व्यवहृत होती है। प्रातःकालीन सन्ध्या गायत्री कहलाती है, मध्यकालीन सन्ध्या सावित्री तथा सायंकालीन सन्ध्या सरस्वती कहलाती है।

सन्ध्या करते समय जप करने का भी विधान है। जिस स्थान पर बैठकर ब्राह्मण सन्ध्या करे, उसी स्थान पर जप करे। सूतक तथा मृतक में भी ब्राह्मण को सन्ध्या नहीं छोड़नी चाहिए। प्रणवयुक्त सात व्याहृतियों-भूः, भुवः, स्वः, महः जनः, तपः तथा सत्यम्- को तथा शिरस् सहित सावित्री मन्त्र को मन से तीन बार पढ़े। इसी को सशीर्ष गायत्री या सावित्री कहा जाता है। सशीर्ष गायत्री मन्त्र इस प्रकार है।

ओम् भूः ओम् भुवः ओम् स्वः ओम् महः ओम् जनः ओम् तपः
ओम् सत्यम्। ओम् तत्सवितुर्वरेण्यम्, ओम् भर्गो देवस्य धीमहि।
ओम् धियो यो न प्रचोयात्। ओम् आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्॥

ब्राह्मण के लिये नित्य प्राणायाम करना आवश्यक है। किस अवसर पर कितना प्राणायाम करना चाहिये, इसका भी विधान वाधूलस्मृति में किया गया है। देवार्चन, जप,होम, स्वाध्याय, श्राद्ध, स्नान, दान तथा ध्यान करते समय तीन-तीन बार प्राणायाम करना चाहिये। किन्तु सन्ध्या तथा अर्घ्यदान में एक-एक बार ही प्राणायाम करे। मध्यमा तथा तर्जनी को छोड़कर अङ्गुष्ठ और अनामिका से अथवा अङ्गुष्ठ और कनिष्ठिका से नासिका को बन्द कर प्राणवायु के आवागमन को रोकना प्राणायाम है।

वाधूलस्मृति मन्त्रजप के लिये निश्चित विधि बताती है। प्रातःकाल मन्त्र-जप करते समय हाथ को उत्तान अवस्था में रखे। सायंकालीन जप में हाथ को अधोमुख अवस्था में तथा मध्याह्न में स्कन्ध तथा भुजाओं के साथ हाथ करके जप करे। जप एक निश्चित संख्या में करना चहिये। इसकी गणना के लिये पद्माक्ष की माला अथवा तुलसी की माला का उपयोग करे। ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ

108 बार, तथा वानप्रस्थ और संन्यासी 1008 बार गायत्री का प्रतिदिन जप करे। गायत्री का जप करते समय उसके प्रत्येक पाद को अलग-अलग रखे।

वाधूलस्मृति ब्राह्मण के लिये नित्यकर्म के रूप में होम करने का विधान करती है। होम-द्रव्य के रूप में चावल, उसका आधा तिल तथा उसका आधा घी होना चाहिए। होम के लिए गाय का घी श्रेष्ठ माना गया है। अगर गाय का घी उपलब्ध न हो, तो भैंस का घी, यदि वह भी उपलब्ध न हो तो बकरी का घी, यदि वह भी उपलब्ध न हो तो तिल के तेल से होम करे। गृहस्थ ब्राह्मण को नित्य अग्निहोत्र करना चाहिए। किन्तु वह इस बात का ध्यान रखे कि पतितवृत्ति वाले व्यक्ति से धन लेकर अग्निहोत्र न करे। अपनी सात्त्विक वृत्ति से प्राप्त धन से ही अग्निहोत्र करना चाहिए।

ब्राह्मण का वेदपाठ से अटूट सम्बन्ध है; क्योंकि यह उसका नित्यकर्म है। श्रोत्रिय वेदपाठी ब्राह्मण की प्रशंसा की गई है। श्रुति और स्मृति ब्राह्मण के दो नेत्र हैं। इनमें से एक से हीन होने पर वह काण है तथा दोनों से हीन होने पर अन्धा है। श्रुति-स्मृतिरूप धर्मशास्त्र के ज्ञान से रहित ब्राह्मण दूसरों को जो प्रायश्चित्त बताता है, उसका पाप प्रायश्चित बताने वाले के ही पास आता है। जो वेदपाठी है तथा नित्य पञ्च महायज्ञों का सम्पादन करता है, वह ब्राह्मण सर्वत्र प्रणाम के योग्य माना जाता है। वेदज्ञ ब्राह्मण चाहे चार हों या तीन हों जो कहें, वही धर्म है, अन्य चाहे हजारों की संख्या में क्यों न हों, उनका कथन धर्म में प्रमाण नहीं।

वाधूलस्मृति ब्राह्मण के लिये एक श्रेष्ठ आचार-संहिता है। ब्राह्मण समाज का तथा राष्ट्र का पुरोहित है। इसलिये उसका आचारसम्पन्न होना अत्यावश्यक है। अगर वह आचारसम्पन्न नहीं होगा, तो समाज तथा राष्ट्र का पथप्रदर्शक नहीं बन सकता। गीता में जो यह कहा गया है-

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।<br>
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

(गीता 3, 21)

वह इसी अभिप्राय से कहा गया है। ब्राह्मण ने अपने नित्यकर्म के रूप में जो नियम निर्धारित किये, वे आत्मानुशासन के लिये ही थे, ताकि वह अपने को

इस योग्य बना सके कि वह अपने आचरण द्वारा समाज के हर वर्ग को सुशिक्षा प्रदान कर सके। आत्मानुशासन-सम्पन्न व्यक्ति के द्वारा प्रदान की गई शिक्षा ही कल्याणकारी हो सकती है। आत्मसंयमहीन तथा आचारहीन के द्वारा प्रदान की गई शिक्षा निष्फल होती है। वाधूलस्मृति का प्रणयन ब्राह्मण को आचारवान् बनाने के उद्देश्य से ही किया गया है। यह उसके प्रथम श्लोक से ही स्पष्ट है। आचारवान् ब्राह्मण का ही चरित्र सबके लिये अनुकरणीय है और व्यक्तित्व-विकास का एक मापदण्ड है।

यह बात उल्लेखनीय है कि वाधूलस्मृति वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बद्ध है। इसमें विष्णु को परम आराध्य माना गया है। प्रातःकाल उठकर हरिसंकीर्तन, पुण्ड्रधारण के लिए विष्णुक्षेत्र से लाई मिट्टी को पवित्र मानना, विष्णुपादोदक का पान करने के बाद आचमन न करने का विधान, विष्णु के विग्रह पर अभिषिक्त चूर्णको मस्तक पर धारण करने से अश्वमेध फल-प्राप्ति का कथन, एकादशी को हरिदिन-रूप से व्रत मानना, तुलसी की महत्ता का प्रतिपादन, वासुदेव के उत्सव में स्पर्श की शंका से स्नान का निषेध, श्राद्ध में भी वासुदेव का पूजन, ये सब तथ्य वाधूलस्मृति का सम्बन्ध वैष्णव परम्परा से जोड़ते हैं। दो श्लोकों में विष्णु के स्वरूप का तथा उनकी उपासना का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है।

धृतोर्ध्वपुण्ड्रः परमीशितारं विष्णुं परं ध्यायति यो महात्मा।
स्वरेण मन्त्रेण सदा हृदिस्थं परात्परं यन्महतो महान्तम्॥ (श्लो 102)

धृतोर्ध्वपुण्ड्रः करचक्रधारिनारायणं साङ्ख्ययोगाधिगम्यम्।
ज्ञात्वा विमुच्येत नरः समस्तैः संसारपाशैरिह चैति विष्णुम्॥ (श्लो 104)

इस प्रकार वैण्णव-परम्परा से सम्बद्ध होने के कारण वाधूलस्मृति में जो ब्राह्मण का नित्य नैमित्तिक आचारधर्म का विधान किया गया है, वह एक वैष्णव ब्राह्मण की आचार-संहिता को लक्ष्य करता है।

वाधूलस्मृति के वर्तमान संस्करण को हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार प्रसन्नता हो रही है। संस्कृतज्ञों को श्लोकार्थ समझने में कठिनाई नहीं होगी, किन्तु सामान्य पाठक भी श्लोक के भाव को समझ सके, इस उद्देश्य से हमने हिन्दी अनुवाद भी दे दिया है। अन्त में श्लोकानुक्रमणी तथा पदानुक्रमणी दी है जिससे श्लोकों तथा पदों को आसानी से खोजा जा सके।

वाधूलस्मृति में स्नान आदि नित्यकर्मों में विनियुक्त होने वाले मन्त्रों को प्रतीक रूप में दिया गया है। मैंने उन मन्त्रप्रतीकों का सम्पूर्णपाठ भी अनुक्रमणी रूप में दे दिया है, ताकि वह उन मन्त्रों का अपने नित्यकर्म में उपयोग कर सके।

अन्त में, इस ग्रन्थ के सम्पादन तथा प्रकाशन में जिन व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त हुआ है, उनके प्रति आभार व्यक्त करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूं। सर्वप्रथम गवर्नमेण्ट ओरिएण्टल मैनुस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास के पुस्तकालयाध्यक्ष तथा उनके अन्य सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करता हूं जिन्होंने ग्रन्थ लिपि में प्राप्त हस्तलेख का देवनागरी लिप्यन्तर उपलब्ध कराया। इस कार्य में मद्रास विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के मेरे मित्र डॉ. सिनीरुद्ध दास तथा डॉ. रमाबाई ने जो मेरी सहायता की, इसके लिये मैं उनका आभारी हूं। महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर के तत्कालीन कुलपति डॉ. पुरुषोत्तम लाल चतुर्वेदी जी का आभारी हूं जिन्होंने वैदिक अध्ययन विभाग में विज़िटिंग प्रोफेसर के रूप में आमन्त्रित कर इस ग्रन्थ को सम्पादित करने का सुअवसर दिया। विज़िटिंग प्रोफेसर के रूप में अजमेर में रहते मुझे 'स्मृति-सन्दर्भ' के सभी खण्ड उपलब्ध कराने के लिये मैं डॉ. पुष्पा गुप्ता, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, अजमेर का आभारी हूं। म.द.स. विश्वविद्यालय के वनस्पतिशास्त्र विभाग के अतिथि-आचार्य डॉ. वी.पी. दीक्षित तथा डॉ. आर. एस. शर्मा (ओ.एस.डी), जो मेरे साथ ही अतिथिगृह में रहते थे, का आभारी हूं जो वाधूलस्मृति के शीघ्र सम्पादन के लिये विशेष रुचि दिखा रहे थे। अजमेर में मेरे स्टेनो श्री विजय बांसल ने सम्पूर्ण प्रेसकापी टाइप की, इसके लिये मैं उनका धन्यवाद करता हूं और उनके मंगलमय भविष्य की कामना करता हूं।

इस ग्रन्थ के पाठ तथा प्रूफ़-संशोधन में अपने संस्थान के ही सहयोगी डॉ. जगदीश प्रसाद सेमवाल तथा डॉ धनश्याम उनियाल ने हमारी सहायता की है, इसलिए मैं उनका धन्यवादी हूँ। ग्रन्थ की अनुक्रमणिका तैयार करने में मेरी दोनों बहुओं श्रीमती सन्ध्या तथा डॉ. अरुणा ने सहयोग दिया, इसलिये उनको अपना आशीष देता हूँ कि वे मां सरस्वती की साधना में सदा लगी रहें। अन्त में

इस ग्रन्थ के मुद्रक मनूजा ऑफसेट वर्क्स के प्रोप्राइटर श्री रामप्रकाश जी का साधुवाद करता हूँ जिन्होंने बड़ी निष्ठा और दक्षता के साथ अल्प समय में ही इस ग्रन्थ को मुद्रित किया। अपने संस्थान के ही श्री ललित मोहन जी चड्ढा का धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने ग्रन्थ के मुद्रणकाल में अनेक प्रकार से सहयोग किया। मैं उनके उत्तम भविष्य की कामना करता हूँ।

—ब्रजबिहारी चौबे

चतुर्वेदनिकेतन
गौतमनगर, जोधामल रोड
होशियारपुर
युगाब्द 5101, वि. संवत् 2056, मकर संक्रान्ति
(14 जनवरी, 2000)

॥ श्रीः॥

# वाधूलस्मृतिः

वाधूलमुनिमासीनमभिगम्य महर्षयः।
प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन् ॥ १ ॥
भगवन् ब्राह्मणादीनामाचारं वद तत्त्वतः।
तच्छ्रुत्वा मुनिशार्दूलस्तानृषीन् प्राह धर्मवित्॥ २ ॥
[१]ब्राह्मान्मुहूर्तादारभ्य त्रिकाले विहितं तथा।
नित्यनैमित्तिकं चैव प्रवक्ष्यामि यथामति॥ ३ ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते सम्प्राप्ते त्यक्तनिद्रः प्रसन्नधीः।
प्रक्षाल्य पादावाचम्य हरिसङ्कीर्तनं चरेत्॥ ४ ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते[२] निद्रां च कुरुते सर्वदा तु यः।
अशुचिं तं विजानीयादनर्हः सर्वकर्मसु॥ ५ ॥

१. बैठे हुये वाधूल मुनि के पास पहुंचकर और उनका यथोचित रूप से सत्कार कर महर्षियों ने यह वचन कहा :-
२. भगवन्, आप ब्राह्मणादिकों के आचारधर्म के विषय में तत्त्व रूप में बतावें। धर्म को जानने वाले तथा मुनियों में श्रेष्ठ ( वाधूल मुनि) ने उसे सुनकर उन ऋषियों को कहा।
३. ब्राह्ममुहूर्त से प्रारम्भ कर तीनों काल (प्रातः, मध्याह्न तथा सायं) में जो नित्य-नैमित्तिक कर्म उनके लिए विहित हैं, उनको अपनी बुद्धि के अनुसार कहूंगा।
४. ब्राह्ममुहूर्त का समय उपस्थित होने पर नींद का परित्याग कर, प्रसन्न बुद्धि होकर, दोनों पैरों को (पानी से) धोकर तथा आचमन करके श्री हरि के गुणों का संकीर्तन करे।
५. ब्राह्ममुहूर्त में जो सदा सोता है, उसे अपवित्र समझना चाहिए, वह सभी कर्मों में अयोग्य है।

---

१. M ब्राह्मं मुहूर्तमार° ; M repeats the verse. २. M adds च after मुहूर्ते.

नक्षत्रज्योतिरारभ्य सूर्यस्योदयनं प्रति।
प्रातःसन्ध्येति तां प्राहुः श्रुतयो मुनिसत्तमाः॥ ६॥
प्रातःसन्ध्यां[१] सनक्षत्रामुपासीत[१] यथाविधि।
सादित्यां पश्चिमां सन्ध्यामर्धास्तमितभास्कराम्॥ ७॥
दिवासन्ध्यासु [२]कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः।
कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ चेद् दक्षिणामुखः ॥ ८॥
[३]अवगुण्ठितसर्वाङ्गस्तृणैराच्छाद्य मेदिनीम्।
घ्राणास्ये वाससाच्छाद्य मलमूत्रं त्यजेद् बुधः ॥ ९॥
अप्रावृतशिरो[४] यस्तु विण्मूत्रं सृजति द्विजः।
तच्छिरः शतधा भूयादिति देवाः[५] शपन्ति तम्॥ १०॥

६. नक्षत्रों के प्रकाश से आरम्भ कर सूर्य के उदय होने तक का जो समय है उसे श्रुतियां तथा श्रेष्ठ मुनि लोग 'प्रातः सन्ध्या' ऐसा कहते हैं।

७. प्रातःकालीन नक्षत्र के प्रकाश तथा सूर्योदय के साथ विधिपूर्वक प्रातः-सन्ध्योपासना तथा सूर्य के आधा अस्त हो जाने पर आदित्ययुक्ता पश्चिम-सन्ध्योपासना करनी चाहिए।

८. दिन में तथा प्रातःसन्ध्या-कालों में कान पर यज्ञोपवीत रखकर उत्तर की ओर मुख करके मूत्र तथा पुरीष का परित्याग करे, किन्तु यदि रात्रि का समय हो तो दक्षिण की ओर मुख करके करे।

९. शरीर के सभी अंगों को सिकोड़ कर, पृथिवी को तृण से आच्छादित कर, नाक और मुख को वस्त्र से ढककर मल एवं मूत्र का परित्याग करे।

१०. जो द्विज शिर को वस्त्र से ढके बिना मल-मूत्र का विसर्जन करता है उसको देवता यह शाप देते हैं कि उसका शिर शतखण्डित होवे।

---

१-१. M °न्ध्याम...क्षत्रा°. २. SmS कर्णस्थो. ३. M एवं कुण्ठित°. ४. M अप्राकृत°; SmS अपावृत्य शिरो. ५. SmS वेदाः.

उत्थाय वामहस्तेन गृहीत्वा चोर्ध्वमेहनम्[१]।
शौचदेशमथाभ्येत्य कुर्याच्छौचं मृदम्बुभिः ॥ ११ ॥
अरत्निमात्रमुत्सृज्य कुर्याच्छौचमनुद्धृते।
पश्चात् तच्छोधयेत्तीर्थमन्यथा[२] न शुचिर्भवेत्॥ १२ ॥
विट्छौचं प्रथमं कुर्यान्मूत्रशौचं ततः परम्।
पादशौचं ततः कुर्यात्करशौचं ततः परम्॥ १३ ॥
पञ्चधा लिङ्गशौचं स्याद् गुदशौचं त्रिवेष्टितम्।
पादयोर्लिङ्गवच्छौचं हस्तयोस्तु चतुर्गुणम्॥ १४ ॥
एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम्।
त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां[३] तु चतुर्गुणम्॥ १५ ॥
यद्दिवा[४] विहितं शौचं तदर्धं निशि कीर्तितम्।
तदर्धमातुरे प्रोक्तमातुरस्यार्धमध्वनि॥ १६ ॥

११. लिंग के ऊर्ध्व भाग को बायें हाथ से पकड़कर तथा उठ कर शौच स्थान से आगे हटकर मिट्टी तथा जलों से गुदा भाग को पवित्र करे।

१२. अरत्निमात्र (१२ अङ्गुल) स्थान छोड़कर बिना ऊपर उठे शौच करना चाहिए। पीछे से उस स्थान (तीर्थ) को शुद्ध करे, अन्यथा वह पवित्र नहीं हो सकता।

१३. गुदा को सर्वप्रथम साफ करे, तदनन्तर लिंग को साफ करे, इसके बाद पैरों को साफ करे तथा इसके पश्चात् हाथों को साफ करे।

१४. पांच बार लिंग को साफ करे, इसका तीन-गुणा बार (१५ बार) गुदा को साफ करे, पैरों को लिंग के समान (पांच बार) साफ करे तथा हाथों को उसके चौगुना बार (बीस बार) साफ करे।

१५. साफ करने का यह विधान गृहस्थों के लिये है, ब्रह्मचारियों के लिए इसका दुगुना, वानप्रस्थियों के लिये तिगुना तथा संन्यासियों के लिये चौगुना विहित है।

१६. दिन में जितनी बार शुद्ध करने का विधान है उसका आधा रात्रिकाल के लिये कहा गया है, उसका भी आधा रोगी के लिये कहा है तथा रोगी से भी आधा यात्रा-काल के लिये है।

---

१. M °धोर्ध्वमेहनः. २. M °येत्तस्य अन्य°. ३. M यतिना°. ४. M यदि वा.

विण्मूत्रकरणात्पूर्वमादद्यान्मृत्तिकां सदा[१]।
आददानस्तु तां पश्चात् सवासा जलमाविशेत्॥ १७॥
आर्द्रामलकमात्रास्तु[२] ग्रासा इन्दुव्रते स्मृताः।
तथैवाहुतयः सर्वाः शौचार्थे याश्च मृत्तिकाः॥ १८॥
[३]शौचं तु[३] द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा।
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिस्तथान्तरम्॥ १९॥
शौचे यत्नः सदा कार्यस्तन्मूलो हि द्विजः स्मृतः।
शौचाचारविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः॥ २०॥
[४]अन्तर्जानुः शुचौ देश उपविष्ट उदङ्मुखः।
प्राग्वा ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ॥ २१॥
गोकर्णाकृतिहस्तेन माषमग्नं[५] जलं पिबेत्।
तन्न्यूनमधिकं पीत्वा सुरापानसमं भवेत्॥ २२॥

१७. मल तथा मूत्र करने से सदा पूर्व मिट्टी रख लेना चाहिए। बाद में मिट्टी लेने वाला वस्त्र सहित जल में प्रवेश करे।

१८. आर्द्र आंवले के फल के बराबर परिमाण का ग्रास चन्द्रव्रत (चन्द्रायण व्रत) में होना चाहिए। इसी परिमाण की सभी आहुतियां होती हैं, और शौच के लिये जो मिट्टी होती है (वह भी)।

१९. शुद्धि दो प्रकार की कही गई है – एक बाह्य तथा दूसरी आभ्यन्तर। मिट्टी और जलों से जो शुद्धि होती है उसे बाह्य कहा गया है तथा जो भाव से शुद्धि होती है वह आभ्यन्तर है।

२०. शुद्धि के लिए सदा यत्न करना चाहिए, क्योंकि ब्राह्मण की मूल शुद्धि ही कही गई है। शुद्धि और आचार से रहित (ब्राह्मण) की सम्पूर्ण क्रियायें निष्फल होती हैं।

२१. घुटनों को अन्दर करके पवित्र स्थान पर उत्तरमुख अथवा पूर्वमुख बैठकर ब्राह्मतीर्थ (अंगुष्ठ के नीचले मूल भाग) से द्विज नित्य आचमन करे।

२२. गाय के कान की सी आकृति वाले हाथ से माष-मज्जन परिमाण वाले जल का पान करे। उससे कम या अधिक पीकर सुरापान के समान होवे।

---

१. SmS तदा. २. M °स्ता. ३-३. M शौचकृत्. ४. M °जानु. ५. M; SmS °मग्न°.

संहताङ्गुलिना तोयं गृहीत्वा पाणिना द्विजः।
मुक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठेन[१] शिष्टेनाचमनं भवेत्॥ २३॥
उपविश्य शुचौ देशे प्राङ्मुखो ब्रह्मसूत्रधृक्[२]।
बद्धचूडः कुशकरो द्विजः शुचिरुपस्पृशेत्॥ २४॥
अप्सु[३] प्राप्तासु हृदयं ब्राह्मणः शुचितामियात्।
राजन्यः [४]कण्ठं तालुं तु[४] वैश्यः शूद्रस्तथा स्त्रियः॥ २५॥
सपवित्रेण हस्तेन कुर्यादाचमनक्रियाम्।
[५]नोच्छिष्टं तत्पवित्रं[५] तु भुक्तोच्छिष्टं तु वर्जयेत्॥ २६॥
कुशहस्तः पिबेत्तोयं कुशहस्तः सदाऽऽचमेत्।
[६]सग्रन्थिकुशहस्तस्तु न कदाचिदुपस्पृशेत्॥ २७॥
प्रभासादीनि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा।
विप्रस्य[७] दक्षिणे कर्णे सन्तीति मनुरब्रवीत्॥ २८॥

२३. जुड़ी हुई अंगुलिवाले हाथ से जल ग्रहण कर अंगुष्ठ तथा कनिष्ठिका को बाहर कर शेष से द्विज आचमन करे।

२४. पवित्र स्थान पर बैठकर, पूर्व की ओर मुख करके, यज्ञोपवीत धारण करके, शिखा बांध कर, हाथ में कुश लेकर द्विज आचमन करे।

२५. (आचमन में) मुख द्वारा पान किये जल के हृदय तक पहुंचने पर ही ब्राह्मण शुचिता को प्राप्त होवे; राजन्य कण्ठ तक तथा वैश्य, शूद्र एवं स्त्रियां तालु तक (जल पहुंचने पर)।

२६. (कुशनिर्मित) पवित्री धारण किये हाथ से ही आचमन क्रिया करे। इससे पवित्री जूठा नहीं होती। किन्तु भोजन करने से वह जूठा हो जाती है, इसलिए भोजन के समय उसे अलग रखे।

२७. हाथ में कुश धारण कर जल पीये, हाथ में कुश रखकर सदा आचमन करे। किन्तु गांठयुक्त कुश धारण किये हाथ से कभी आचमन न करे।

२८. प्रभास आदि तीर्थ, गंगा आदि नदियां (ये सब) ब्राह्मण के दक्षिण कान में (स्थित) हैं, ऐसा मनु ने कहा है।

---

१. SmS °कनिष्ठे तु. २. SmS °धृत्. ३. M अस्वा. ४-४. M °कण्ठतालन्तु; SmS °तालुस्पृक्. ५-५. M नोच्चिष्टन्ते..पवि°. ६. M सग्रन्थिकं कुशहस्तन्तु. ७. M प्रविश्य.

प्राङ्मुखोदङ्मुखो भूत्वा[१] समाचम्य विशुध्यति।
पश्चिमे पुनराचम्य याम्यां[२] स्नानेन शुध्यति॥ २९॥
[३]आर्द्रवासा जले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम्।
शुष्कवासाः स्थले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम्॥ ३०॥
आम्रेक्षुखण्डताम्बूलचर्वणे सोमपानके।
विष्णवङ्घ्रितोयपाने च [४]नाद्यन्ताचमनं स्मृतम्॥ ३१॥
विष्णुपादोद्भवं तीर्थं पीत्वा न क्षालयेत्करम्।
क्षालयेद्यदि मोहेन पञ्चपातकमाप्नुयात्॥ ३२॥
उपवासदिने यस्तु दन्तधावनकृन्नरः।
स घोरं नरकं याति व्याघ्रभक्षश्चतुर्युगम्॥ ३३॥

२९. पूर्व की ओर मुख करके तथा उत्तर की ओर मुख करके सम्यक् प्रकार से आचमन कर (व्यक्ति) पवित्र हो जाता है। (यदि) पश्चिम की ओर मुख करके आचमन करता है तो दुबारा आचमन करके पवित्र होता है। (किन्तु) दक्षिण दिशा की ओर मुख करके आचमन करता है, तो स्नान से ही शुद्ध होता है।

३०. जल में गीला कपड़ा धारण किये ही तर्पण, आचमन तथा जप करे। (किन्तु) स्थल पर सूखा कपड़ा धारण करके ही तर्पण, आचमन तथा जप करे।

३१. आम, गन्ने का टुकड़ा तथा ताम्बूल चबाने में, सोमपान में, विष्णु के चरणामृतपान में न तो आदि में और न ही अन्त में आचमन कहा गया है।

३२. विष्णु के चरणामृत तीर्थ (जल) को पीकर हाथ नहीं धोना चाहिए। यदि मोहवश हाथ धोता है तो वह पांच प्रकार के पातकों को प्राप्त होवे।

३३. उपवास के दिन जो व्यक्ति दन्तधावन करता है, वह घोर नरक में जाता है और चारों युगों में व्याघ्र का भक्ष्य होता है।

---

१. SmS वापि. २. SmS °याम्या. ३. M आर्द्रा वासा. ४. M नाद्यं नाच°.

**प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च मुखं चाद्भिः समाहितः।**
**आचम्य प्राङ्मुखः पश्चात् दन्तधावनमाचरेत्॥ ३४॥**
**आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः[१] पशुवसूनि च।**
**ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो धेहि वनस्पते॥ ३५॥**
**यस्तु गण्डूषसमये तर्जन्या वक्त्रशोधनम्।**
**कुर्वीत यदि मूढात्मा नरके पतति द्विजः ॥ ३६॥**
**अलाभे दन्तकाष्ठानां प्रतिषिद्धदिनेष्वपि।**
**अपां [२]द्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिर्भविष्यति॥ ३७॥**
**प्रतिपत्पर्वषष्ठीषु नवमी द्वादशी तथा।**
**दन्तानां काष्ठसंयोगो[३] दहत्यासप्तमं कुलम्॥ ३८॥**
**सुरया लिप्तदेहोऽपि प्रायश्चित्तीयते द्विजः।**
**प्रातरभ्यक्तदेहस्य निष्कृतिर्न विधीयते॥ ३९॥**

३४. दोनों पैरों, दोनों हाथों तथा मुख को अच्छी प्रकार से जल से साफ करके, पूर्व की ओर मुख करके आचमन करके तदनन्तर दन्तधावन करे।

३५. (दन्तधावन से पूर्व यह कहे— ) हे वनस्पति, तुम हमें आयु, बल, कीर्ति, दीप्ति, प्रजा, पशु, धन, ब्रह्म, बुद्धि तथा मेधा प्रदान करो।

३६. चुल्ली करते समय जो मूढ द्विज तर्जनी अंगुली से यदि मुख साफ करे तो वह नरक में जाता है।

३७. दातुन के प्राप्त न होने पर तथा दन्तधावन के लिये निषिद्ध दिनों में भी जल की बारह चुल्लियों से मुख की शुद्धि हो जाती है।

३८. प्रतिपदा, पूर्णिमा तथा अमावस्या, षष्ठी, नवमी, तथा द्वादशी को दांतों का लकड़ी से संयोग व्यक्ति को सात कुल पर्यन्त जलाता है।

३९. सुरा से लिप्त देहवाला भी द्विज प्रायश्चित्त करके पाप से निवृत्त हो सकता है, किन्तु प्रातःकाल शरीर में तेल लगाने वाले द्विज की पाप से निवृत्ति नहीं हो सकती।

---

१. M प्रजां. २. SmS षोडश°. ३. M °संयोगे.

तैलाभ्यङ्गं महाराज ब्राह्मणानां करोति यः।
स स्नातोऽब्दशतं साङ्गं[१] गङ्गायां नात्र संशयः॥ ४०॥
द्रव्यान्तरयुतं तैलं न कदाचन दुष्यति।
तैलमाज्येन संयुक्तं ग्रहणेऽपि न दुष्यति॥ ४१॥
छायामन्त्यश्वपाकानां[२] स्पृष्ट्वा स्नानं समाचरेत्।
चत्वारिंशत्पदादूर्ध्वं[३] छायादोषो न विद्यते॥ ४२॥
अस्पृश्यस्पर्शने चैव त्रयोदश निमज्ज्य च।
आचम्य प्रयतः पश्चात्स्नानं विधिवदाचरेत्॥ ४३॥
ज्वराभिभूता या नारी रजसा च परिप्लुता।
कथं तस्या भवेच्छौचं शुध्यते[४] केन कर्मणा॥ ४४॥
चतुर्थेऽहनि संप्राप्ते स्पृशेदन्या[५] तु तां[५] स्त्रियम्।
सा सचेलावगाह्यापः[६] स्नात्वा स्नात्वा पुनः स्पृशेत्॥ ४५॥

४०. हे महाराज, जो ब्राह्मणों की तेल से मालिश करता है वह मानों सौ वर्ष तक अङ्गों सहित गंगा में स्नान कर चुका है, इसमें कोई संशय नहीं।

४१. किसी अन्य (औषधि) द्रव्य से युक्त तेल दूषित नहीं होता। घृत से संयुक्त तेल ग्रहणकाल में भी दूषित नहीं होता।

४२. अन्त्यज तथा चाण्डालों की छाया मात्र का स्पर्श होने पर स्नान करना चाहिए। चालीस कदम के बाद छाया-दोष नहीं होता।

४३. अस्पृश्य का स्पर्श होने पर तेरह बार डूबकी लगाकर आचमन करके शुद्ध होकर तदनन्तर विधिवत् स्नान करे।

४४. (ऋषियों ने पूछा— ) जो स्त्री ज्वर से अभिभूत है, तथा रजस्वला की स्थिति में है, उसकी शुद्धि किस प्रकार होवे, वह किस कर्म से शुद्ध हो सकती है ?

४५. (वाधूल मुनि ने उत्तर दिया-) चौथा दिन प्राप्त होने पर कोई अन्य स्त्री उस स्त्री का स्पर्श करे। वह स्त्री वस्त्रसहित जल में डुबकी लगावे, फिर स्नान करे, तदनन्तर फिर स्नान करे और उस (रजस्वला स्त्री) का वह पुनः स्पर्श करे।

---

१. M साग्रं. २. M broken between छायाम and पाकानां. ३. M °दामूर्ध्वं. ४. M शुध्यन्ते. ५-५. M °न्याकृता. ६. M °गाह्याथ.

दश द्वादशकृत्वो वा ह्याचामेच्च पुनः पुनः।
अन्ते च वाससां[१] त्यागः ततः शुद्धा भवेत्तु सा ॥ ४६ ॥
दद्याच्छक्त्या ततो दानं पुण्याहेन विशुध्यति ॥ ४७ ॥
आर्तवाभिप्लुते नार्यौ सम्भाषेतां मिथो यदि।
उपवासस्तयोराहुरशुद्धौ[२] शुद्धिकारणम् ॥ ४८ ॥
शावे च सूतके चैव ह्यन्तरा चेदृतुर्भवेत्।
अस्नात्वा भोजनं कुर्याद् भुक्त्वा चोपवसेद् गृहे[३] ॥ ४९ ॥
उत्सवे वासुदेवस्य[४] यः स्नाति स्पर्शशङ्कया।
स्वर्गस्थाः पितरस्तस्य पतन्ति नरके क्षणात् ॥ ५० ॥
अस्पृश्यस्पर्शने वान्तावश्रुपाते[५] क्षुरे[६] भगे।
स्नानं नैमित्तिकं ज्ञेयं देवर्षिपितृवर्जितम् ॥ ५१ ॥

४६. (इस प्रकार) दस या बारह बार उसे पुनः पुनः आचमन कराकर अन्त में वस्त्र का त्याग करावे, तब वह शुद्ध होवे।

४७. तदनन्तर वह अपनी शक्ति के अनुसार दान देवे। पुण्याहवाचन के द्वारा वह पूर्ण रूप से विशुद्ध हो जाती है।

४८. यदि दो स्त्रियां ऋतुमती होने पर परस्पर बातचीत करें तो उन दोनों की अशुद्धि में शुद्धि का कारण उपवास बताते हैं।

४९. शव-सम्बन्धी कर्म में तथा सूतक में स्त्री यदि ऋतुमती होवे तो बिना स्नान किये भोजन करे तथा भोजन करके अपने गृह में वास करे।

५०. कृष्णोत्सव में स्पर्श की आशंका से जो व्यक्ति स्नान करता है, उसके स्वर्गस्थ पितर उसी क्षण नरक में गिर जाते हैं।

५१. अस्पृश्य के स्पर्श में, वमन करने में, अश्रुपात में, क्षौरकर्म में तथा योनिस्पर्श में स्नान को नैमित्तिक समझना चाहिए, किन्तु देव, ऋषि तथा पितृकार्य को छोड़कर।

---

१. M वाससा. २. M °वासन्ते यो राहु°. ३. M °गृहः. ४. M वसु°. ५. M °वान्तोवश्रु°; SmS वान्तौ अश्रु°. ६. SmS क्षुते.

स्वर्धून्यम्भःसमानि स्युः सर्वाण्यम्भांसि[1] भूतले।
कूपस्थान्यपि सोमार्कग्रहणे नात्र संशयः ॥५२॥
अश्रोत्रियः श्रोत्रियो [2]वा कुपात्रं[2] पात्रमेव वा।
विप्रब्रुवो वा विप्रो वा ग्रहणे दानमर्हति॥५३॥
सर्वं भूमिसमं दानं सर्वो ब्रह्मसमो द्विजः।
[3]सर्वं गङ्गासमं तोयं[3] ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥५४॥
प्रातराचमनं कृत्वा शौचं कृत्वा यथाविधि।
दन्तशौचं ततः कृत्वा प्रातःस्नानं समाचरेत्॥५५॥
द्वौ हस्तौ युग्मतः कृत्वा पूरयेदुदकाञ्जलिम्।
गोश्रृङ्गमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये जलं क्षिपेत्॥५६॥
येन तीर्थेन गृह्णीयात्तेन दद्याज्जलाञ्जलिम्।
अन्यतीर्थेन गृह्णीयात्तत्तोयं रुधिरं भवेत्॥५७॥

५२. सूर्य तथा चन्द्रग्रहण में, पृथिवी पर सभी जल गंगा के जल के समान हैं; यहां तक कि कुएं का भी पानी, इसमें कोई संशय नहीं।

५३. श्रौतकर्म न करने वाला हो, अथवा श्रौतकर्म करने वाला हो, कुपात्र हो अथवा सुपात्र हो, कहलाने मात्र का ब्राह्मण हो, अथवा मेधावी ब्राह्मण हो, ग्रहणकाल में दान लेने के योग्य है।

५४. चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहणकाल में सभी दान भूमिदान के समान हैं, सभी ब्राह्मण ब्रह्म के समान हैं, सभी जल गंगाजल के समान हैं।

५५. प्रातः-काल आचमन करके तथा विधिपूर्वक शौच करके तदनन्तर दन्तधावन करके प्रातःकालीन स्नान करना चाहिए।

५६. दोनों हाथों को जोड़कर उसमें जल की अञ्जुलि भरे तथा गौ की सींग के बराबर उसे ऊपर उठाकर जल के बीच जल का प्रक्षेप करे।

५७. जिस तीर्थ से जल ग्रहण किया गया हो, उसी से जलाञ्जलि देनी चाहिए। अन्य तीर्थ से जो जल ग्रहण किया गया है वह जल रुधिर के समान होता है।

---

१. M सर्वाम्भांसि. २-२. M यो वार्कुपात्रं; SmS अपात्रं. ३-३. M सर्वं भूमिसमं दानं.

पूर्वाशाभिमुखो देवानुत्तराभिमुखस्त्वृषीन्[१]।
पितॄंस्तु[२] दक्षिणास्यस्तु जलमध्ये तु तर्पयेत्॥ ५८॥
स्नानार्थमभिगच्छन्तं देवाः पितृगणैः सह।
वायुभूतास्तु गच्छन्ति तृषार्ताः सलिलार्थिनः ॥ ५९॥
निराशास्ते निवर्तन्ते वस्त्रनिष्पीडने कृते।
तस्मान्न पीडयेद् [३]वस्त्रमकृत्वा पितृतर्पणम्[३]॥ ६०॥
वस्त्रं चतुर्गुणीकृत्य निष्पीड्य[४] च जलाद्बहिः।
वामप्रकोष्ठे निक्षिप्य द्विराचम्य शुचिर्भवेत्॥ ६१॥
मनुष्यतर्पणे चैव स्नानवस्त्रनिपीडने।
निवीती[५] तु भवेद्विप्रस्तथा मूत्रपुरीषयोः ॥ ६२॥

५८. पूर्व दिशा की ओर मुख करके देवों का, उत्तर की ओर मुख करके ऋषियों का तथा दक्षिण की ओर मुख करके पितरों का जल में तर्पण करे।
५९. स्नान के लिये जाते हुए व्यक्ति के पास देवता पितृगणों के साथ वायुरूप होकर प्यास से आतुर तथा जल-प्राप्ति की कामना वाला होकर जाते हैं।
६०. वस्त्र निचोड़ने पर वे (पितर) निराश होकर लौट जाते हैं। इसलिए पितृतर्पण किये बिना गीले वस्त्र को निचोड़ना नहीं चाहिए।
६१. वस्त्र को चतुर्गुण करके जल के बाहर उसे निचोड़कर और बायें कोहनी से नीचे की भुजा पर रखकर तथा दो बार आचमन करके व्यक्ति पवित्र होवे।
६२. मनुष्य-तर्पण में, स्नान किये वस्त्र को निचोड़ने में तथा मूत्र एवं पुरीष के विसर्जन में ब्राह्मण जनेऊ को गले में माला की तरह धारण किया हुआ होवे।

---

१. M °मुखं ऋषीन्. २. M तॄन् सुद°. ३-३. M वस्त्रमेके च इति मन्त्रतः. The text तस्मान्न पीडयेद् वस्त्रमकृत्वा पितृतर्पणम् is also given before निराशास्ते=कृते, which seems to be superfluous; ४. M निष्पिष्य. ५. M निवीति.

नदीषु देवखातेषु[1] गिरिप्रस्रवणेषु च।
स्नानं प्रतिदिनं कुर्यात् सर्वकर्मप्रसिद्धये ॥ ६३ ॥
परकीयनिपानेषु न स्नायाद्वै कदाचन।
[2]स्नात्वा निपानकर्तुस्तु[2] दुष्कृतांशेन लिप्यते ॥ ६४ ॥
अन्यायोपात्तवित्तस्य पतितस्य च वार्धुषेः[3]।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ६५ ॥
अन्त्यजैः खातिताः[4] कूपास्तटाका वाप्य एव च।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ६६ ॥
परकीयनिपानेषु यदि स्नायात्कथञ्चन।
सप्त पिण्डान् समुद्धृत्य तत्र स्नानं समाचरेत् ॥ ६७ ॥
लालास्वेदसमाकीर्णः शयनादुत्थितः पुमान्।
अशुचिं तं विजानीयादनर्हः सर्वकर्मसु ॥ ६८ ॥

६३. नदियों में, प्राकृतिक तालाबों में तथा पर्वत से गिरने वाले झरनों में सर्वकर्म प्रसिद्धि के लिये प्रतिदिन स्नान करे।

६४. दूसरों के बनाये स्नानागारों में कभी भी स्नान नहीं करना चाहिए। (अन्य के स्नानगार में) स्नान करने से स्नानागार बनाने वाले व्यक्ति के दुष्कृत अंश से लिप्त हो जाता है।

६५. अन्याय के द्वारा जिसको धन प्राप्त हुआ है, जो पतित हो गया है तथा जो सूदखोर है, उसके यहां स्नान करके तथा पानी पीकर व्यक्ति प्राजापत्य प्रायश्चित्त करे।

६६. अन्त्यजों के द्वारा जो कुएं, तटाक, तथा वापी खोदवाये गये हैं, वहां स्नान करने तथा पानी पीने पर उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं।

६७. दूसरों के बनाये स्नानागारों में यदि किसी प्रकार स्नान करे तो सात पिण्ड देकर स्नान करे।

६८. लार तथा स्वेदादि से संयुक्त, शयन से उठा हुआ जो व्यक्ति है, उसको अपवित्र समझना चाहिए। वह सभी कर्मों में अयोग्य होता है।

---

१. M °घातेषु. २-२. M निपानक स्नात्वा तु, cf Manu (4.201) : निपानकर्तुः स्नात्वा तु. ३. M वार्धुषैः. ४. M खादिताः.

स्नानमूलाः क्रियाः सर्वाः सन्ध्योपासनमेव च।
स्नानाचारविहीनस्य सर्वाः स्युर्निष्फलाः क्रियाः ॥ ६९ ॥
उपव्युषसि यत्स्नानं सन्ध्यायामुदितेऽपि वा।
प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम् ॥ ७० ॥
स्नानवस्त्रेण यः कुर्याद् देहस्य परिमार्जनम्।
शुनालीढं भवेद् गात्रं पुनः स्नानेन शुध्यति॥ ७१ ॥
उषःकाले भानुवारे यो नरः स्नानमाचरेत्।
माघस्नानसहस्राणि गङ्गायमुनसङ्गमे॥ ७२ ॥
जन्मर्क्षे वैधृते[1] पुष्ये व्यतीपाते च सङ्क्रमे।
अमायां च नदीस्नानं कुलकोटिं[2] समुद्धरेत्[3]॥ ७३ ॥
अकृत्यमपि कुर्वाणो भुञ्जानोऽपि यतस्ततः।
कदाचिन्नारकं दुःखं प्रातःस्नायी न पश्यति॥ ७४ ॥

६९. सभी (धार्मिक) क्रियायें, सन्ध्या एवं उपासनायें स्नानमूलक हैं, इसलिए स्नान का आचरण न करने वाले व्यक्ति के लिये सभी क्रियायें निष्फल हैं।

७०. प्रातः उषाकाल में, सायं सन्ध्या काल में और जो सूर्य के उदित होने पर भी स्नान होता है वह प्राजापत्य के समान है और महान् पातक को नष्ट करने वाला है।

७१. स्नानयुक्त वस्त्र से जो (व्यक्ति) अपने शरीर का परिमार्जन करता है उसका शरीर कुत्ता द्वारा चाटे गये के समान है, इसलिए पुनः स्नान करने से शुद्ध होता है।

७२. रविवार के दिन उषाकाल में जो व्यक्ति स्नान करता है वह मानो गंगा-यमुना के संगम में हजारों माघमास का स्नान करता है।

७३. जन्म-नक्षत्र में, वैधृत योग में, पुष्यनक्षत्र में, व्यतीपात में, संक्रान्ति में तथा अमावस्या में जो नदी-स्नान है वह कोटि कुलों का उद्धार करता है।

७४. अकृत्य कर्म करता हुआ भी तथा इधर-उधर से भोजन करता हुआ भी प्रातः स्नान करनेवाला व्यक्ति कभी भी नारकी दुख नहीं देखता।

---

१. Sms वैधृतौ. २. M °कोटीं. ३. M समाचरेत्.

विना स्नानेन यो भुङ्क्ते स मलाशी न संशयः।
अस्नाताशी मलं भुङ्क्ते ह्यजपः[१] पूयशोणितम्॥ ७५॥
अहुताशी कृमिं भुङ्क्ते ह्यदाता विषमश्नुते॥ ७६॥
सङ्कल्पसूक्तपठनं मार्जनं चाघमर्षणम्।
देवर्षितर्पणञ्चैव स्नानं पञ्चाङ्गमिष्यते॥ ७७॥
[२]'हिरण्यशृङ्ग'मित्युक्त्वा जलं समवगाहयेत्।
'सुमित्रा'[३] इत्युदाहृत्य स्वात्मानमभिषेचयेत्॥ ७८॥
'दुर्मित्रा'[४] इत्युदाहृत्य मृत्स्थाने[५] जलमुत्सृजेत्।
[६]'योऽस्मान्द्वेष्टी'त्युदाहृत्य तथा तत्र जलं क्षिपेत्॥ ७९॥
'यं च वयं द्विष्म'[७] इति पुनस्तत्र जलं क्षिपेत्।
एवं त्रिर्मृत्तिकास्थाने[८] जलमञ्जलिनोत्सृजेत्॥ ८०॥

७५. बिना स्नान किये हुए जो व्यक्ति भोजन करता है, वह मल का भोजन करने वाला है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। बिना स्नान किये खाने वाला मल खाता है, तथा बिना जप किये खाने वाला पीब तथा रुधिर खाता है।
७६. बिना आहुति दिये भोजन करने वाला (मानों) कीट खाता है, बिना अन्य को दिये भोजन करने वाला (मानों) विष खाता है।
७७. स्नान पांच अंगों वाला होता है–संकल्प, सूक्तपाठ, मार्जन, अघमर्षण जप तथा देव एवं ऋषियों का तर्पण।
७८. 'हिरण्शृङ्गम्' इस मन्त्र का उच्चारण करके जल में प्रवेश करे; 'सुमित्रा' इस मंत्र का उच्चारण कर अपने ऊपर जल फेंके।
७९. 'दुर्मित्रा' इस मन्त्र का उच्चारण कर मिट्टी वाले स्थान पर जल छोड़े। 'योऽस्मान् द्वेष्टि' इस मन्त्र का उच्चारण कर वहीं पर जल छोड़े।
८०. 'यं च वयं द्विष्मः' इस मन्त्र से पुनः वहीं पर जल छोड़े। इस प्रकार तीन बार मृत्तिका स्थान पर अञ्जलि से जल छोड़े।

---

१. SmS °ह्यजयः. २. TĀ 10.1.74. ३. TĀ 10.1.70. ४. TĀ. 10.1.70. ५. M त्रिस्थाने. ६. TĀ 10.1.70. ७. TĀ 10.1.70. ८. SmS °स्नाने.

'नमोऽग्नये'[१]ति मन्त्रेण नमस्कुर्याज्जलं ततः।
[२]'यदपा'मित्यमेध्यांशं निरस्येद् दक्षिणे जलम्॥ ८१॥
[३]'अत्याशना' दिति द्वाभ्यां [४]त्रिरालोड्य तु पाणिना।
चतुरस्त्रं तीर्थपीठं पाणिनोल्लिख्य वारिषु॥ ८२॥
नन्दिनीत्यादिनामानि बद्धाञ्जलिपुटो भवेत्॥ ८३॥
आवाहयामि त्वां देवि स्नानार्थमिह सुन्दरि।
एहि गङ्गे नमस्तुभ्यं[४] सर्वतीर्थसमन्विते॥ ८४॥
'इमं मे गङ्ग'[५] इत्युक्त्वा पुण्यतीर्थानि च स्मरेत्।
'आपो अस्मान्'[६] इत्यृचमुक्त्वा मज्जनमाचरेत्॥ ८५॥
[७]'आपो हि ष्ठा'दिभिर्मन्त्रैरात्मानं[८] प्रोक्ष्य[९] वारिभिः।
ततो नारायणं स्मृत्वा प्रजपेदघमर्षणम्॥ ८६॥

८१. तदनन्तर 'नमोऽग्नये' इस मन्त्र से जल को नमस्कार करे। 'यदपाम्' इस मन्त्र से अमेध्य जल को दक्षिण दिशा में फेंके।

८२-८३. 'अत्याशनात्' इन दो मन्त्रों का उच्चारण कर, हाथ से तीन बार जल का आलोड़न कर, हाथ से जलों में आयताकार तीर्थपीठ बनाकर, नन्दिनी इत्यादि नामों को भी (जलों में) लिखकर, हाथों को बद्धाञ्जलि करके स्थित होवे।

८४. हे देवि, हे सुन्दरि, यहां स्नान के लिये तुम्हारा आवाहन करता हूं। हे सर्वतीर्थ से समन्वित गङ्गे, यहां आवो, तुमको नमस्कार है।

८५. 'इमं मे गङ्गे' इस मन्त्र का उच्चारण कर पुण्य तीर्थों का स्मरण करे और 'आपो अस्मान्' इस मन्त्र का उच्चारण कर स्नान करे।

८६. 'आपो हि ष्ठा' इत्यादि (तीन) मन्त्रों द्वारा जलों से अपना प्रोक्षण करके तदनन्तर नारायण का स्मरण कर अघमर्षण सूक्त का जप करे।

---

१. M नमो गनयेति ; cf TĀ 10.1.76. २. SmS यदपित्य°. cf. TĀ 10.1.77. ३. TĀ 10.1.78-79. ४-४. om. ५. TĀ. 10.1.81. ६. TS 1.2.1.1. ७. TĀ 10.1.71-73. ८. SmS °मन्त्रैरभि. ९. SmS adds च after प्रोक्ष्य.

अघमर्षणसूक्तस्य ऋषिरेवाघमर्षणः।
छन्दोऽनुष्टुप्तथा देवो भाववृत्तोऽधिदेवता॥ ८७॥
त्रिवारमष्टवारं वा निमज्ज्यान्तर्जले[१] जपेत्।
'एष भूतस्य'[२] मन्त्रेण पुनः प्रोक्षणमाचरेत्॥ ८८॥
'आर्द्रं ज्वलति'[३] मन्त्रेण [४]प्रविशेन्मन्त्रितं जलम्।
'अकार्यकार्य'[५] मन्त्रं तु[६] पुनर्मज्जञ्जले जपेत्॥ ८९॥
'तद्विष्णो'[७]रिति मन्त्रेण मज्जेदप्सु पुनः पुनः।
गायत्री वैष्णवी ह्येषा विष्णोः संस्मरणाय वै॥ ९०॥
प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वा चाभक्ष्यभक्षणम्।
'तद्विष्णो'[७]रित्यपां मध्ये सकृज्जप्त्वा विशुध्यति॥ ९१॥
उत्तीर्य च द्विराचम्य देवार्दीस्तर्पयेत्ततः।
'ऊर्जं वहन्ती'[८]रिति च 'तृप्यते'[९]ति स्थले क्षिपेत्॥ ९२॥

८७. अघमर्षणसूक्त के ऋषि अघमर्षण हैं, छन्द अनुष्टुप् है, तथा भाववृत्त देवता है।

८८. जल में डुबकी लगाकर तीन बार अथवा आठ बार इस (अघमर्षण) सूक्त का जप करे तथा 'एष भूतस्य' इस मन्त्र के द्वारा पुनः प्रोक्षण करे।

८९. 'आर्द्रं ज्वलति' इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल का आचमन करे। 'अकार्य-कार्य' इस मन्त्र से पुनः डुबकी लगाकर जल में जप करे।

९०. 'तद्विष्णोः' इस मन्त्र से जल में बार-बार डुबकी लगावे। यही वैष्णवी गायत्री विष्णु के संस्मरण के लिये है।

९१. न ग्रहण करने योग्य वस्तु को ग्रहण करके, तथा अभक्ष्य का भक्षण करके (जो पाप प्राप्त होता है वह) जल के मध्य 'तद्विष्णोः' इस मन्त्र का एक बार जप करके शुद्ध हो जाता है।

९२. जल से बाहर निकलकर, दो बार आचमन करके देवादिकों का तर्पण करे। तदनन्तर 'ऊर्जं वहन्तीः' तथा 'तृप्यत' इन मन्त्रों से स्थल पर जल गिरावे।

---

१. SmS निमज्ज्यात्तज्जले. २. TĀ 10.1.86 ; SmS एवं भूतस्य for 'एष भूतस्य'. ३. TĀ. 10.1.88. ४. M प्रायशे°. ५. TĀ. 10.1.89. ६. M मन्त्रन्ते. ७. TS 1.3.6.2. ८. VS 2.34. ९. Āpmp 2.20.23.

स्नानवस्त्रेण हस्तेन यो द्विजोऽङ्गं[१] प्रमार्जति।
वृथा[२] भवति तत्स्नानं पुनःस्नानेन शुध्यति॥ ९३॥
[३]मार्जयेद्वस्त्रशेषेण नोत्तरीयेण वा शिरः।
न च निर्धुनुयात्केशान् न तिष्ठन् परिमार्जयेत्॥ ९४॥
स्नानं कृत्वार्द्रवस्त्रं तु ऊर्ध्वमुत्तारयेद् द्विजः।
स्नानवस्त्रमधस्ताच्चेत्पुनः स्नानेन शुध्यति[३]॥ ९५॥
प्रातः सन्ध्यामुपासीत [४]वस्त्रसंशोधपूर्विकाम्।
उपास्य मध्यमां सन्ध्यां वस्त्रनिष्पीडनं परम्॥ ८६॥
स्नानमूलाः क्रियाः सर्वाः सन्ध्योपासनमेव च।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन[४] स्नानं कुर्यादतन्द्रितः॥ ९७॥
प्रातरुत्थाय यो विप्रः प्रातःस्नायी सदा भवेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति॥ ९८॥

९३. स्नान किये हुए वस्त्र से तथा हाथ से जो द्विज अपने अंगों को साफ करता है, उसका किया हुआ वह स्नान व्यर्थ हो जाता है। वह पुनः स्नान करने से शुद्ध होता है।
९४. शेष वस्त्र से शिर का मार्जन करे, उत्तरीय वस्त्र से नहीं। केशों को भी न झटकारे और न ही खड़ा होकर मार्जन करे।
९५. स्नान करके गीले वस्त्र को ब्राह्मण ऊपर से निकाले। यदि स्नान किये वस्त्र को नीचे से निकाले तो स्नान करके शुद्ध होता है।
९६. प्रातःकालीन सन्ध्या वस्त्रसंशोधपूर्विका (अर्थात् वस्त्र पहले धोकर) करनी चाहिए। मध्यकालीन सन्ध्या करके तदनन्तर वस्त्र निचोड़े।
९७. सभी (धार्मिक) क्रियायें, सन्ध्या एवं उपासनायें स्नानमूलक हैं। इसलिये सभी प्रयत्नपूर्वक बिना प्रमाद के स्नान करे।
९८. प्रातःकाल उठकर जो विप्र नित्य प्रातःस्नायी होता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर परम ब्रह्म पद को प्राप्त होता है।

---

१. M ऽहं. २. SmS तथा. ३-३. M om. ४-४. M om.

अन्तराच्छाद्य कौपीनं वाससी परिधाय च।
उत्तरीयं [१]सदाऽऽदद्यात् तद्विना नाचरेत्क्रियाः ॥९९॥
यज्ञोपवीतवद् धार्यमुत्तरीयं सदा बुधैः।
वन्दने तर्पणे चैव कट्यामेव च धारयेत् ॥१००॥
मुखजानामूर्ध्वपुण्ड्रं तिलकं बाहुजन्मनाम्।
[२]पदाकारमूरुजानां त्रिपुण्ड्रं पादजन्मनाम्[२] ॥१०१॥
धृतोर्ध्वपुण्ड्रः[३] परमीशितारं विष्णुं परं ध्यायति यो[४] महात्मा।
स्वरेण मन्त्रेण सदा हृदिस्थितं परात्परं यन्महतो महान्तम् ॥१०२॥
महोपनिषदि प्रोक्तमूर्ध्वपुण्ड्रं वरं शुभम् ॥१०३॥
धृतोर्ध्वपुण्ड्रः करचक्रधारि[५]- नारायणं साङ्ख्ययोगाधिगम्यम्।
ज्ञात्वा विमुच्येत नरः[६] समस्तैः संसारपाशैरिह चैति[७] विष्णुम् ॥१०४॥

९९. लंगोटी को अन्दर आच्छादित कर तथा दो वस्त्र पहनकर ऊपर से सदा उत्तरीय वस्त्र धारण करे। इसके बिना कोई भी (धार्मिक) क्रिया न करे।

१००. विद्वानों को यज्ञोपवीत की तरह (बायें कन्धे के ऊपर तथा दायें हाथ के नीचे) सदा उत्तरीय वस्त्र धारण करना चाहिए। किन्तु वन्दन तथा तर्पण में उसे कमर में धारण करे।

१०१. ब्राह्मणों के लिये ऊर्ध्व पुण्ड्र, क्षत्रियों के लिये तिलक, वैश्यों के लिए पदाकार तथा शूद्रों के लिये त्रिपुण्ड्र, विहित है।

१०२. ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करके जो महात्मा परम स्वामी, सदा हृदय में स्थित रहने वाले महान् से भी महान् परात्पर परम विष्णु को स्वर तथा मन्त्र से ध्यान करता है (वह मुक्त हो जाता है)।

१०३. महोपनिषद् में ऊर्ध्वपुण्ड्र को श्रेष्ठ तथा शुभ कहा गया है।

१०४. ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करने वाला, हाथ में चक्र धारण करने वाले तथा जो सांख्य और योग के द्वारा जानने योग्य हैं ऐसे नारायण को जानकर मनुष्य समस्त सांसारिक पाशों से विमुक्त हो जाता है और विष्णु को प्राप्त करता है।

---

१. SmS समादद्यात्. २-२. M om. ३. M पुण्ड्रं. ४. SmS om. ५. M, SmS कृतचक्रधारी. [M °धारि] ६. M नरैः. ७. M चेति.

अथर्वशिरसि प्रोक्तमूर्ध्वपुण्ड्रविधिं द्विजाः।
प्रवक्ष्यामि हितार्थं वो भवपापप्रणाशनम् ॥१०५॥
हरेः पादाकृतिं रम्यमात्मनश्च हिताय वै ॥१०६॥
मध्येच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं[१] यो धारयति सर्वदा।
स परस्य प्रियो नित्यं पुण्यभाङ् मुक्तिभाग्भवेत् ॥१०७॥
चतुरङ्गुलमूर्धाग्रं द्व्यङ्गुलं विस्मृतं[२] मृदा।
द्विजः पुण्ड्रमृजुं सौम्यं सान्तरालं तु धारयेत् ॥१०८॥
ऊर्ध्वगत्यां तु यस्येच्छा तस्योर्ध्वं पुण्ड्रमुच्यते।
ऊर्ध्वं गत्वा स[३] देवत्वं सम्प्राप्नोति[४] न संशयः ॥१०९॥
पर्वताग्रे नदीतीरे विष्णुक्षेत्रे विशेषतः।
सिन्धुतीरेऽथ वल्मीके तुलसीमूलमाश्रिते ॥११०॥
मृद एतास्तु[५] सङ्ग्राह्या वर्ज्या अन्याश्च[६] मृत्तिकाः ॥१११॥

१०५-१०६. अथर्वशिरस् (नामक ग्रन्थ) में, हे ब्राह्मणों, सांसारिक पापों को नष्ट करने वाली ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करने की जो विधि दी गई है, उसे आप लोगों के हित के लिए कहूंगा और अपने कल्याण के लिये भी भगवान् विष्णु की रमणीय चरणाकृति को कहूंगा।

१०७. मध्य में छिद्रयुक्त ऊर्ध्वपुण्ड्र को जो सदा धारण करता है वह परम (विष्णु) का प्रिय तथा नित्य पुण्य तथा मुक्ति का भागी होता है।

१०८. चार अङ्गुल वाले शिर के अग्रभाग में दो अङ्गुल मिट्टी (भस्म) से लिप्त सरल, सौम्य तथा अन्तरालयुक्त पुण्ड्र को द्विज धारण करे।

१०९. जिस व्यक्ति की ऊर्ध्वगति में इच्छा हो, उसके लिए ऊर्ध्वपुण्ड्र कहा गया है। ऊपर जाकर वह देवत्व को प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं।

११०-१११. पर्वत के अग्रभाग में, नदी के तट पर, विशेषकर विष्णुक्षेत्र में, सिन्धु के तट पर, वल्मीक में, तथा तुलसी की जड़ में स्थित, ये सब मिट्टी ग्रहण के योग्य हैं, इनके अतिरिक्त अन्यत्र की मिट्टी वर्जित है।

---

१. M °छिद्रन्तु पुण्ड्रं ; SmS छिन्दन्नुर्ध्वपुण्ड्रं. २. SmS विस्तृतं. ३. M न for स ; SmS तु. ४. SmS स प्राप्नोति. ५. M एतान्तु. ६. M °वर्ज्याश्चान्यश्च.

श्यामं शान्तिकरं प्रोक्तं रक्तं[१] वश्यकरं[२] भवेत्।
श्रीकरं [३]पीतमित्याहुर्मोक्षदं श्वेतमुच्यते॥११२॥
अङ्गुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तो मध्यमायुष्करी[४] भवेत्।
अनामिकाऽन्नदा नित्यं [५]तर्जनी भुक्तिमुक्तिदा[५]॥११३॥
अभिषिक्तं तु यच्चूर्णं विष्णुबिम्बे तु यो नरः।
हारिद्रां[६] धारयेन्नित्यं सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥११४॥
अनागतां तु ये पूर्वामनतीतां तु पश्चिमाम्।
सन्ध्यां नोपासते[७] विप्राः कथं ते ब्राह्मणाः स्मृताः॥११५॥
यावन्तोऽस्यां पृथिव्यां तु विकर्मस्था द्विजातयः।
तेषां हि पावनार्थाय सन्ध्या सृष्टा स्वयंभुवा॥११६॥
गायत्री नाम पूर्वाह्ने सावित्री मध्यमे दिने।
सरस्वती च सायाह्ने सैव सन्ध्या त्रिधा स्मृता॥११७॥

११२. श्याम वर्ण का पुण्ड्र शान्तिकर कहा गया है, रक्त वर्ण का (पुण्ड्र) वश में करने वाला, पीतवर्ण का श्री बढ़ाने वाला तथा श्वेत वर्ण का मोक्ष देने वाला कहा जाता है।

११३. अङ्गुष्ठ पुष्टि देनेवाला कहा गया है, मध्यमा आयुष्य प्रदान करने वाली होती है, अनामिका नित्य अन्न देने वाली होती है तथा तर्जनी भुक्ति और मुक्ति दोनों देने वाली होती है।

११४. विष्णु के बिम्ब में अभिषिक्त जो चूर्ण है उसे तथा हल्दी को जो व्यक्ति नित्य धारण करे, वह अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त करे।

११५. सूर्य के आगमन से पूर्व प्रातःकालीन संध्या तथा अस्त होने से पूर्व की सायंकालीन (पश्चिमा) सन्ध्या की उपासना जो ब्राह्मण नहीं करते, वे ब्राह्मण कैसे कहलाते हैं ?

११६. इस पृथिवी पर जितने विकर्मों में रत द्विज हैं उन सबको पवित्र करने के लिये ही स्वयम्भु ब्रह्मा द्वारा सन्ध्या की सृष्टि की गई।

११७. गायत्री नाम से पूर्वाह्न में, सावित्री नाम से मध्याह्न में तथा सरस्वती नाम से सायंकाल में वही संध्या तीन प्रकार से कही गई है।

---

१. M रत्नं. २. M °करो. ३. M वीतत्यमि°. ४. SmS °पुष्करी. ५-५. M तर्जनी मुक्तिभुक्तिदा. ६. SmS °रिद्रं. ७. M °पास्यते.

प्रतिग्रहादन्नदोषात्पातकादुपपातकात् ।
गायत्री प्रोच्यते तस्माद्[१] गायन्तं[२] त्रायते यतः ॥११८॥
सवितृद्योतनाच्चैव सावित्री परिकीर्तिता ।
जगतः प्रसवित्री[३] सा वाग्रूपत्वात्सरस्वती ॥११९॥
'आपो हि ष्ठे'[४]त्यृचा कुर्यान्मार्जनं तु कुशोदकैः ।
प्रतिप्रणवसंयुक्तं क्षिपेद्वारि पदे पदे ॥१२०॥
विप्रुषोऽष्टौ[५] क्षिपेदूर्ध्वमधो 'यस्य क्षयाय'[६] च ।
संवत्सरकृतं पापं मार्जनान्ते विनश्यति ॥१२१॥
रजस्तमोमोहजाताञ्जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिजान् ।
वाङ्मनःकायजान् दोषान्नवैतान्नवभिर्दहेत् ॥१२२॥
नवप्रणवयुक्तेन 'आपो' [७]हि ष्ठा' तृचेन[७] च ।
संवत्सरकृतं पापं मार्जनान्ते विनश्यति ॥१२३॥

११८. प्रतिग्रह लेने से तथा अन्नदोष से, पातक से तथा उपपातक से चूंकि स्तुति करने वाले की रक्षा करती है, इसलिए यह गायत्री कहलाती है।

११९. सविता को द्योतित करने अथवा सविता द्वारा द्योतित की जाने के कारण ही यह सावित्री कही जाती है। वाक् रूप से जगत् को उत्पन्न करने के कारण वह सरस्वती कहलाती है।

१२०. 'आपो हि ष्ठा' इस ऋक् से कुशोदकों से मार्जन करे। प्रणव से युक्त प्रत्येक पाद पर जल छिड़के।

१२१. आठ जलबूंदों को ऊपर छिड़के; 'यस्य क्षयाय' इस मन्त्र से नीचे छिड़के। इससे संवत्सर भर का किया हुआ पाप मार्जनोपरान्त नष्ट हो जाता है।

१२२. रजस्-तमस्-मोहजनित, जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिजनित तथा वाक्-मन-शरीरजनित इन नव दोषों को नव मंत्रों से दग्ध करे।

१२३. नव प्रणवयुक्त 'आपो हि ष्ठा' आदि तीन मन्त्रों से संवत्सर भर का किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है।

---

१. SmS यस्माद्. २. M गायते. ३. SmS adds च after प्रसवित्री. ४. TĀ 10.1.71. ५. M वि... षोढौ. ६. TĀ 10.1.73. ७-७. M हिष्ठे तृचेन; SmS हिष्ठेत्यृचेन; TĀ 10.1.71-73.

ऋगन्ते मार्जनं कुर्यात्पादान्ते वा समाहितः।
तृचस्यान्तेऽथवा कुर्याच्छिष्टानां मतमीदृशम्॥१२४॥
पश्चादुभाभ्यां हस्ताभ्यां परिषिच्य यथाक्रमम्।
[1]'सूर्यश्चे'ति जलं पीत्वा 'दधिक्राव्णे'[2]ति मार्जयेत्॥१२५॥
पश्चादुभाभ्यां हस्ताभ्यामादायापः समाहितः।
रवेरन्तर्मुखस्तिष्ठन् [3]सप्तव्याहृतिपूर्वया॥१२६॥
गायत्र्या चाभिमन्त्र्यापो[4] निक्षिपेद् द्विजसत्तमः॥१२७॥
तिष्ठन् पादौ समौ कृत्वा जलेनाञ्जलिपूरणम्।
गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य[5] जलमध्ये जलं क्षिपेत्॥१२८॥
सायंकाले तु यो विप्रो जले त्वर्घ्यं विनिक्षिपेत्[6]।
स मूढो नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम्॥१२९॥

१२४. ऋक् के अन्त में, अथवा पाद के अन्त में, अथवा तृच के अन्त में समाहित चित्त से मार्जन करे, ऐसा श्रेष्ठ लोगों का मत है।

१२५. पीछे से दोनों हाथों से यथाक्रम परिषेचन करके, 'सूर्यश्च' इस मन्त्र से जल पीकर, 'दधिक्राव्णा' इस मन्त्र से मार्जन करे।

१२६-१२७. पीछे से दोनों हाथों से जल लेकर समाहित चित्त होकर सूर्य की ओर अन्तर्मुख खड़े होकर सात व्याहृतिपूर्वक गायत्री से अभिमन्त्रित करके श्रेष्ठ ब्राह्मण जल छोड़े।

१२८. दोनों पैरों को समान करके खड़े होकर जल से अञ्जलि भरकर गोशृङ्गमात्र ऊपर ले जाकर जल के बीच जल छोड़े।

१२९. सायंकाल जो विप्र जल में अर्घ्य देता है, वह मूर्ख जब तक पञ्च महाभूतों का प्रलय नहीं हो जाता तब तक के लिए नरक में जाता है।

---

१. TĀ.10.32.1. २. TS 1.5.11.11. ३. M, SmS तारव्या°. ४. M °मन्त्र्याथो. ५. SmS °मुत्सृज्य. ६. M न निक्षि°.

यत्र सन्ध्यां प्रकुर्वीत तत्रैव जपमाचरेत्।
अन्यत्र तु जपं कुर्वन् पुनः सन्ध्यां समाचरेत्॥१३०॥
वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे।
स्नातकव्रतलोपे च दिनमेकमभोजनम्॥१३१॥
अर्घ्यप्रदानतः पूर्वमुदयास्तमये सति।
गायत्र्यष्टशतं जप्यं प्रायश्चित्तं द्विजातिभिः॥१३२॥
यत्र[१] प्रातरतिक्रामेदुपवासोऽहरुच्यते।
तथा सायमतिक्रामेद्रात्रिं चोपवसेद् द्विजः॥१३३॥
'यदद्य कच्च वृत्रहन्'[२] प्रातरर्घ्यमनुस्मृतः[३]।
[४]'उद्भेदभी'ति मध्याह्ने प्रायश्चित्तार्घ्यमुच्यते॥१३४॥
'न तस्ये'[५] ति च सायाह्ने [६]ततोऽर्घ्यमुपसंहरेत्॥१३५॥
सूतके मृतके वापि सन्ध्याकर्म न संत्यजेत्।
मनसोच्चारयेन्मन्त्रान् प्राणायाममृते द्विजः॥१३६॥

१३०. जहां पर सन्ध्या करे वहीं पर जप करना चाहिए। अन्यत्र जप करने पर पुनः सन्ध्या करे।

१३१. वेदोक्त नित्य कर्मों के अतिक्रमण होने पर तथा स्नातक का व्रतलोप होने पर एक दिन का उपवास करे।

१३२. अर्घ्य प्रदान करने से पूर्व (सूर्य के) उदय और अस्त हो जाने पर १०८ बार गायत्री का जप प्रायश्चित्त रूप में ब्राह्मणों द्वारा किया जाना चाहिए।

१३३. इनमें यदि प्रातःकाल अतिक्रमण हो तो उस दिन भर का उपवास करे। इसी प्रकार सायंकाल अतिक्रमण होने पर उस रात्रि भर का उपवास ब्राह्मण करे।

१३४-१३५ 'यदद्य कच्च वृत्रहन्' इस मन्त्र से प्रातरर्घ्य कहा गया है। 'उद्भेदभि' इस मन्त्र से मध्याह्न में प्रायश्चित्तार्घ्य कहा जाता है, 'न तस्य' इस मन्त्र से सायं। वहीं पर अर्घ्य का उपसंहार करे।

१३६. सूतक में अथवा मृतक में भी ब्राह्मण सन्ध्याकर्म नहीं छोड़े। प्राणायाम के बिना मन से मन्त्रों का उच्चारण करे।

---

१. M तत्र. २. RV 8.93.4. ३. M °मनुर्मतः. ४. SmS उच्छेदभीति. ५. TĀ. 10.1.10. ६. M तत्रोस्त्र°.

प्रणवेन तु संयुक्ता व्याहृतीः सप्त नित्यशः।
सावित्रीं शिरसा सार्धं मनसा त्रिः पठेद् द्विजः॥१३७॥
देवार्चने जपे होमे स्वाध्याये श्राद्धकर्मणि।
स्नाने दाने तथा[1] ध्याने प्राणायामास्त्रयस्त्रयः॥१३८॥
आदावन्ते च गायत्र्यां प्राणायामास्त्रयस्त्रयः[2]।
सन्ध्यायामर्घ्यदाने च प्राणायामाः सकृत्सकृत्॥१३९॥
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु तथैव च कनिष्ठया।
प्राणायामस्तु कर्त्तव्यो मध्यमां तर्जनीं विना॥१४०॥
तर्जनीं मध्यमां स्पृष्ट्वा जपन् शूद्रसमो भवेत्॥१४१॥
कृत्वोत्तानौ करौ प्रातः [3]सायमधोमुखौ करौ।
मध्ये[4] स्कन्धभुजाभ्यां[5] तु जप एवमुदाहृतः॥१४२॥
अधोहस्तं तु पैशाचं मध्यहस्तं तु राक्षसम्।
बद्धहस्तं तु गान्धर्वमूर्ध्वहस्तं तु दैवतम्॥१४३॥

१३७. प्रणव से युक्त नित्य सात व्याहृतियों तथा शिरस् सहित सावित्री को मन के द्वारा तीन बार ब्राह्मण पढ़े।

१३८. देवार्चन, जप, होम, स्वाध्याय, श्राद्धकर्म, स्नान, दान तथा ध्यान में तीन-तीन बार प्राणायाम करे।

१३९. गायत्री में आदि और अन्त में प्राणायाम तीन-तीन बार करे, किन्तु सन्ध्या में तथा अर्घ्यदान में एक-एक बार प्राणायाम करे।

१४०-१४१. अङ्गुष्ठ और अनामिका के द्वारा तथा उसी प्रकार (अङ्गुष्ठ) और कनिष्ठिका के द्वारा मध्यमा और तर्जनी के बिना प्राणायाम करना चाहिए। तर्जनी और मध्यमा का स्पर्श कर जप करता हुआ शूद्र के समान होवे।

१४२. प्रातःकाल दोनों हाथों को उत्तान करके, सायं दोनों हाथों को नीचे की ओर करके तथा मध्याह्न में स्कन्ध और भुजा के साथ (हाथ करके) जप (हो), ऐसा कहा गया है।

१४३. नीचे हाथ करके (जप) पैशाच है, मध्य में हाथ करके (जप) राक्षस है, हाथ बांधकर (जप) गान्धर्व है तथा ऊपर हाथ करके (जप) देवता है।

---

१. M तदा. २. M त्रयस्त्रियः, ३. M om सायम्. ४. M मध्यो. ५. M स्कन्धौजा°.

**प्रदक्षिणे प्रणामे च पूजायां हवने जपे।**
**न कण्ठावृतवस्त्रः स्याद् दर्शने गुरुदेवयोः॥१४४॥**
**दर्भहीना च या सन्ध्या यच्च दानं विनोदकम्।**
**असङ्ख्यातं च यज्जप्तं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्॥१४५॥**
**जपस्य गणनां प्राहुः पद्माक्षैर्भक्तिवर्धनम्।**
**जपेच्च[1] तुलसीकाष्ठैः फलमक्षयमश्नुते॥१४६॥**
**अच्छिन्नपादा गायत्री ब्रह्महत्यां प्रयच्छति।**
**छिन्नपादा तु गायत्री ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥१४७॥**
**गृहस्थो ब्रह्मचारी च शतमष्टोत्तरं जपेत्।**
**वानप्रस्थो[2] यतिश्चैव जपेदष्टसहस्रकम्॥१४८॥**
**प्रस्थधान्यं[3] चतुःषष्टेराहुतेः परिकीर्तितम्।**
**तिलानां तु तदर्धं स्यात्तदर्धं स्याद् घृतस्य च॥१४९॥**

१४४. प्रदक्षिणा में, प्रणाम में, पूजा में, हवन में, जप में तथा गुरु एवं देवता के दर्शन में कण्ठावृत वस्त्र वाला नहीं होना चाहिए।

१४५. जो सन्ध्या दर्भ के बिना की जाती है, बिना जल के जो दान दिया जाता है तथा जो जप बिना संख्या के है, वे सब निष्फल होवे।

१४६. जप की गणना पद्माक्षों से करनी भक्ति को बढ़ाने वाली होती है, तुलसी की लकड़ी की माला से जप करे तो इससे अक्षय फल प्राप्त करता है।

१४७. पादों का बिना विच्छेद किये (उच्चारण की जाने वाली) गायत्री ब्रह्महत्या प्रदान करती है, किन्तु पादों का विच्छेद वाली गायत्री ब्रह्महत्या को दूर करती है।

१४८. गृहस्थ तथा ब्रह्मचारी १०८ बार जप करे, वानप्रस्थ तथा संन्यासी १००८ बार जप करे।

१४९. चौसठ आहुतियों के लिए एक प्रस्थ (लगभग एक सेर) धान्य कहा गया है। उससे तिलों का (परिमाण) आधा होना चाहिए और उसका आधा घृत का होना चाहिये।

---

१. M जपेत्. २. M प्रस्था°. ३. M प्रस्थायान्यं.

आत्मारूढोऽप्सु[१] मज्जेद्वा वदेद्वा[२] पतितादिभिः।
अथवा योषितं गच्छेदनृतौ काममोहितः ॥१५०॥
वदन्त्येषु निमित्तेषु केचिदग्निविनाशनम्।
आपस्तम्बस्य तन्नेष्टमात्मारूढः सदा शुचिः॥१५१॥
यस्य भार्या विदूरस्था पतिता वा रजस्वला।
अनिच्छा[३] प्रतिकूला वा तस्याः[४] प्रतिनिधौ क्रिया॥१५२॥
अन्ये कुशमयीं पत्नीं[५] कृत्वा तु प्रतिरूपिकाम्[६]।
केचिच्छरमयीं पत्नीं नित्यकर्माणि कारयेत्॥१५३॥
होमार्थं गोघृतं ग्राह्यं तदलाभे तु माहिषम्।
आजं वा तदलाभे तु साक्षात्तैलं ग्रहीष्यते॥१५४॥

१५०. अपने में अग्नि का समारोहण किया हुआ (व्यक्ति) जल में प्रवेश करे, अथवा पतितादिकों से बात करे, काममोहित होकर बिना ऋतुकाल के स्त्रीगमन करे।

१५१. इन निमित्तों में कुछ आचार्य अग्नि का विनाश मानते हैं। किन्तु यह मत आपस्तम्ब को अभीष्ट नहीं। (उनके मत में) आत्मारूढ़ (व्यक्ति) सदा पवित्र होता है।

१५२. जिसकी पत्नी बहुत दूर हो, पतित हो गई हो, या रजस्वला हो, या इच्छा न करती हो, या प्रतिकूल हो, तो ऐसी स्थिति में उसके प्रतिनिधि में क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए।

१५३. कुछ लोग प्रतिनिधि रूप में कुश की पत्नी बनाकर, कुछ लोग काश की पत्नी बनाकर नित्य कर्म कराते हैं।

१५४. होम के लिये गाय का घी ग्रहण करना चाहिए। यदि वह न मिले तो भैंस का अथवा उसके अभाव में बकरी का अथवा उसके भी अभाव में साक्षात् तिल का तेल ग्रहण करना चाहिए।

---

१. SmS °रुढाप्सु. २. M वन्देद्वा. ३. SmS अनिष्टा. ४. M तस्यां. ५. M पङ्क्तिं. ६. M °रूपकाम्.

**यः शूद्रादधिगम्यार्थमग्निहोत्रं करोति चेत्।**
**दाता तत्फलमाप्नोति कर्ता तु नरकं व्रजेत्॥१५५॥**
**ऋत्विजस्ते हि शूद्राः स्युर्ब्रह्मवादिषु गर्हिताः॥१५६॥**

**[1]मेरुमन्दरतुल्यानि वाजपेयशतानि च।**
**कन्याकोटिप्रदानं च [2]न समं सायमाहुतेः[2]॥१५७॥**

**कृतदारो न वै तिष्ठेत् क्षणमप्यग्निना विना।**
**तिष्ठते चेद् द्विजो ब्राह्म्यं[3] त्यक्त्वा तु पतितो भवेत्॥१५८॥**

**समिदात्मसमारूढो द्विकालमहुतस्तथा।**
**धारणाग्निश्चतुर्वारं स वह्निर्लौकिको भवेत्॥१५९॥**

**आरोपिताग्नेः समिधस्तु नाशे सीमादिलङ्घे च पराग्निवेशे[4]।**
**[5]'अयाश्च' मन्त्रेण चतुर्गृहीत्वा तेनैव मन्त्रेण सकृज्जुहोति॥१६०॥**

१५५-१५६. जो व्यक्ति शूद्र से धन प्राप्त करके यदि अग्निहोत्र करता है, तो देने वाला तो उसके फल को प्राप्त करता है, किन्तु करने वाला नरक में जाता है। ऐसे ऋत्विज ब्रह्मवादियों में गर्हित शूद्र होवें।

१५६. मेरु पर्वत के तुल्य सैकड़ों वाजपेय तथा करोड़ों कन्यादान सायंकालीन आहुति के समान नहीं है।

१५८. विवाहित व्यक्ति एक क्षण भी अग्नि के बिना न रहे। अगर वह ऐसा रहता है तो वह ब्रह्मत्व को छोड़कर पतित होवे।

१५९. समिधा के द्वारा जिस अग्नि का स्वयं में समारोहण किया है, तथा जो दोनों समय अहुत है और चार बार जिस अग्नि को धारण किया जा चुका है, वह अग्नि लौकिक हो जाती है।

१६०. आधान किये हुए अग्नि के समिधा के नष्ट होने पर, सीमादि के उल्लङ्घन में, दूसरे अग्नि का रूप ग्रहण करने पर 'अयाश्च' इस मन्त्र से चार बार घृत ग्रहण कर उसी मन्त्र से एक बार आहुति देता है।

---

१. M मेरुमुदर. २-२. SmS समं सामयिकाहुतेः. ३. M ब्रह्म्यं, SmS ब्राह्मं. ४. SmS वेश. ५. MS. 1.4.3.

ब्रह्मयज्ञे जपेत्सूक्तं पौरुषं चिन्तयन् हरिम्[१]।
स सर्वान् जपते देवान्[२] साङ्गोपाङ्गविधानतः ॥१६१॥
वेदाक्षराणि यावन्ति नियुज्यादर्थकारणात्।
तावतीं ब्रह्महत्यां वै वेदविक्रय्यवाप्नुयात्[३] ॥१६२॥
प्रख्यापनं प्राध्ययनं प्रश्नपूर्वप्रतिग्रहः[४]।
याजनाध्यापने वादः षड्विधो वेदविक्रयः ॥१६३॥
आरवारे च शौक्रे च मन्वादिषु युगादिषु।
नाहरेत्तुलसीपत्रं मध्याह्नात्परतस्ततः[५] ॥१६४॥
सङ्क्रान्त्यां पक्षयोरन्त्ये द्वादश्यां निशिसन्ध्ययोः।
तुलसीं ये[६] विचिन्वन्ति ते कृन्तन्ति[७] हरेः शिरः ॥१६५॥
तीर्थे पापं न कुर्वीत न कुर्याच्च प्रतिग्रहम्।
दुर्जरं पातकं तीर्थे दुर्जरश्च प्रतिग्रहः ॥१६६॥

१६१. ब्रह्मयज्ञ में विष्णु का ध्यान करते हुए पुरुष-सूक्त का जप करे (ऐसा करके मानो) वह सभी देवताओं का साङ्गोपाङ्ग विधानपूर्वक जप करता है।

१६२. वेद के जितने अक्षरों का उपयोग धन प्राप्त करने की दृष्टि से करता है उतनी ही ब्रह्महत्या वेद बेचकर वह पापी प्राप्त करता है।

१६३. प्रख्यापन, प्राध्ययन, प्रश्नपूर्व-प्रतिग्रह, याजन, अध्यापन तथा वाद ये ६ प्रकार के वेद-विक्रय हैं।

१६४. मंगलवार तथा शुक्रवार को, मन्वादि तथा युगादि में मध्याह्न के बाद तुलसी-पत्र न तोड़े।

१६५. संक्रान्ति में, पक्षों के अन्त में, द्वादशी में, रात्रि में, तथा दोनों सन्धिकालों में जो व्यक्ति तुलसी तोड़ते हैं वे विष्णु के ही शिर को काटते हैं।

१६६. तीर्थ में पाप कर्म न करे, और न ही दान ग्रहण करे, क्योंकि तीर्थ में पाप दुर्जर होता है तथा प्रतिग्रह भी दुर्जर होता है।

---

१. M हरिः. २. SmS वेदान्. ३. M °विक्रीय पाववान्. ४. SmS °पूर्वं प्रति°. ५. M °परस्ततः. ६. M यो. ७. M कृन्दन्ति.

[१]ऋतामृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा।
[२]सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कथञ्चन ॥१६७॥
यो राज्ञः प्रतिगृह्यैव शोचितव्ये प्रहृष्यति।
न जानाति किलात्मानं [३]विष्टकूपे निपातितम् ॥१६८॥
तृणं वा यदि वा काष्ठं मूलं वा यदि वा फलम्।
अनापृष्ट्यैव[४] गृह्णीयाद्धस्तछेदनमर्हति ॥१६९॥
वानस्पत्यं मूलफलं दार्वग्न्यर्थं[५] तथैव च।
तृणं च गोभ्यो ग्रासार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत् ॥१७०॥
भ्रूणहत्यां वार्धुषिं[६] च तुलायां समतोलयत्।
अतिष्ठद्[७] भ्रूणहा कोट्यां वार्धुषिः[८] समकम्पत ॥१७१॥
अयाचिताहृतं[९] ग्राह्यमपि दुष्कृतकारिणः[१०]।
अन्यत्र कुलटाषण्डपतितेभ्यस्तथा द्विषः[११] ॥१७२॥

१६७. ऋत (शिलोञ्छवृत्ति) और अमृत (किसी से याचना न करना) के द्वारा जीये, अथवा मृत (भिक्षावृत्ति) और प्रमृत (कृषिवृत्ति) द्वारा जीये, अथवा सत्यानृत (वाणिज्यवृत्ति) के द्वारा भी जीये, किन्तु कभी भी श्वानवृत्ति (नौकरी) से न जीये।

१६८. जो राजा का प्रतिग्रह लेकर शोक करने योग्य स्थिति में प्रसन्न होता है, वह विष्ठा के कूप में पतित अपनी आत्मा को नहीं जानता।

१६९. तृण हो अथवा काष्ठ हो, मूल हो या फल हो, बिना किसी के पूछे ही यदि ग्रहण करे, तो वह हाथ काटने के योग्य है।

१७०. जंगली वृक्षों का (पूजा के लिये लिया गया) मूल, फल, अग्निहोत्र के लिए लिया गया काष्ठ और गाय के ग्रास के लिये लिया गया तृण स्तेय नहीं है, ऐसा मनु ने कहा है।

१७१. भ्रूण-हत्या और सूदखोरी को तुला पर एक साथ तौला। कोटि में भ्रूण-हत्या वाला स्थित हुआ, सूदखोर कम्पित हो गया।

१७२. बिना मांगे प्राप्त हुई वस्तु ग्रहण-योग्य होने पर भी दुष्कर्म करने वाले, कुलटा, हिजड़ा, पतित तथा द्वेष करने वाले को छोड़कर ग्रहण करनी चाहिए।

---

१. M जतामृ°. २. M सत्यामृता. ३. M om विष्ट. ४. M °वृष्ट्यैव. ५. M °ग्न्यक्षि. ६. M च वृद्धिं; SmS प्रसिद्धिं. ७. SmS प्रति°. ८. M वार्धुषी. ९. M °चितहृतग्रा°. १०. SmS दुष्कृतकर्मण:. ११. M om द्वि.

महापातकिनश्चोराद् दम्भिकाद्[1] भिषजस्तथा।
मृगयोः पिशुनाच्चैव नादद्यादाहृतं द्विजः ॥१७३॥
[2]कुलटाषण्डपतितवैरिभ्यः काकिणीमपि[3]।
[4]उद्यतामपि न[5] गृह्णीयादापद्यपि कदाचन ॥१७४॥
परार्थे तिलहोतारं परार्थे मन्त्रजापिनम्।
मातापित्रोरपोष्टारं दृष्ट्वा चक्षुर्निमीलयेत् ॥१७५॥
कुक्कुटश्वानमार्जारान् पोषयन्ति दिनत्रयम्।
इह जन्मनि शूद्रत्वं मृते[6] श्वा चाभिजायते ॥१७६॥
परहिंसारताः क्रूराः[7] परदारपरायणाः।
परद्रव्यापहारी च चण्डाला यस्तु निर्दयः ॥१७७॥
नगरे पट्टणे वापि द्वादशाब्दं तु यो वसेत्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥१७८॥

१७३. महापातकी, चोर, दम्भी, वैद्य, शिकारी तथा पिशुन द्वारा लाई गई वस्तु को द्विज ग्रहण न करे।

१७४. कुलटा, षण्ड, पतित तथा शत्रु से उनके देने के लिये उद्यत होने पर भी, आपत्काल में भी उनसे कौड़ी भी कभी ग्रहण नहीं करना चाहिए।

१७५. दूसरे के लिये तिल का होम करने वाले, दसरे के लिये मन्त्र का जप करने वाले तथा माता-पिता का पोषण न करने वाले को देखकर भी आंख बन्द कर लेना चाहिए।

१७६. मुर्गा, कुत्ता तथा बिल्ली इन्हें तीन दिन तक भी जो पोषता है वह इस जन्म में शूद्रत्व तथा मरने के बाद कुत्ता रूप में उत्पन्न होता है।

१७७. दूसरे की हिंसा में रत रहने वाला, क्रूर दूसरे की पत्नी से प्रेम करने वाला, दूसरे के द्रव्य का अपहण करने वाला तथा जो निर्दय है, ये सब चण्डाल हैं।

१७८. नगर में अथवा कस्बे में भी १२ वर्ष तक जो रहता है, वह जीवनकाल में ही सपरिवार शीघ्र शूद्रत्व को प्राप्त होता है।

---

१. M अम्भष्ठात् ; SmS °रादम्बष्ठा°. २. SmS कुलंदा(पा)षण्ड°. ३. M काकणं. ४. M उद्याता°. ५. M om. ६. SmS मृतः. ७. M शूराः.

राजाश्रयेण यो मर्त्यो द्वादशाब्दं वसेद्यदि।
जीवमानो भवेच्छूद्रो नात्र कार्या विचारणा॥१७९॥
अनृतं[1] स्वसमुत्कर्षो राजगामी च पैशुनम्।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया॥१८०॥
यस्मिन्देशे यदा काले यन्मुहूर्ते च यद्दिने।
हानिर्वृद्धिर्यशो लाभः तत्तथा न तदन्यथा[2]॥१८१॥
अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं वदन्ति ये।
तत्पापं शतधा भूत्वा [3]तद्वक्तॄनधिगच्छति॥१८२॥
चत्वारो वा त्रयो वापि यद्[4] ब्रूयुर्वेदपारगाः।
स धर्म इति विज्ञेयो नेतरस्तु[5] सहस्रशः॥१८३॥
ये पठन्ति द्विजा वेदं पञ्चयज्ञरताश्च ये।
त्रैलोक्यं तारयन्त्येते[6] पञ्चेन्द्रियरता अपि॥१८४॥

१७९. जो मनुष्य १२ वर्ष तक राजाश्रम में यदि बसे तो वह जीवित शूद्र होवे, इसमें कोई विचार करने की बात नहीं।

१८०. अनृत, अपना समुत्कर्ष, राजगामी होना, पिशुनता तथा गुरु का असत्य के प्रति लगाव ये सब ब्रह्महत्या के समान हैं।

१८१. जिस देश में, जिस काल में, जिस मुहूर्त में तथा जिस दिन (जैसा) हानि, वृद्धि, यश तथा लाभ हो, वह वैसा ही होता है। वह उससे अन्यथा नहीं हो सकता।

१८२. धर्मशास्त्रों को बिना जाने जो प्रायश्चित्त बताते हैं वह पाप सैंकड़ों प्रकार का होकर उन बताने वालों के पास जाता है।

१८३. चार या तीन वेद-विद्वान् जिसको धर्म बतावें वही धर्म है, ऐसा जानना चाहिए। अन्यों के द्वारा हजारों बार कहा हुआ भी नहीं।

१८४. जो द्विज वेद पढ़ते हैं तथा जो पांच यज्ञों के करने में सदा रत रहते हैं, वे पञ्चेन्द्रिय कर्मों में रत होकर भी तीनों लोकों को पार करते हैं।

---

१. SmS अनृतात्. २. M तयान्यया. ३. M तद्वक्त्रान° ; Sms तद्वक्त्रम°. ४. M यं ५. M नेतरै°. ६. M तोर°.

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
ब्राह्मणश्चानधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः[१] ॥१८५॥

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्।
याजनाध्यापनाद्धीनो[२] न[३] तु शय्यासनाशनात् ॥१८६॥

सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति सम्प्राप्ते तु कलौ युगे।
नानुतिष्ठन्ति वेदोक्तं पाषण्डोपहता जनाः ॥१८७॥

षष्ठ्यष्टमी हरिदिनं द्वादशी च चतुर्दशी।
पर्वद्वयञ्च सङ्क्रान्तिः [४]श्राद्धाहो जन्मतारिका[४] ॥१८८॥

श्रवणव्रतकालश्च विशेषदिवसास्तथा।
एते काला निषिद्धाः स्युर्भद्रे मैथुनकर्मणि ॥१८९॥

कृते सम्भाष्य पतति त्रेतायां दर्शनेन तु[५]।
द्वापरे त्वन्नमादाय कलौ पतति कर्मणा ॥१९०॥

१८५. जिस प्रकार काठ का हाथी, तथा जिस प्रकार चमड़े का बना मृग होता है उसी प्रकार वेदाध्ययन न करने वाला ब्राह्मण होता है। ये तीनों केवल नाममात्र धारण करने वाले हैं।

१८६. पतित के साथ रहता हुआ ब्राह्मण एक वर्ष में भ्रष्ट हो जाता है, वह यज्ञ करने तथा अध्यापन से हीन हो जाता है, किन्तु शय्या, आसन तथा भोजन से (त्याज्य) नहीं।

१८७. कलि युग के आगमन पर सभी ब्रह्म का उपदेश करेंगे। किन्तु पाषण्ड से युक्त वे लोग वेदोक्त (धर्म एवं कर्म) का अनुष्ठान नहीं करते।

१८८-१८९. षष्ठी, अष्टमी, हरिदिन (एकादशी), द्वादशी, चतुर्दशी, दोनों पर्व (पूर्णिमा तथा अमावस्या), संक्रान्ति, श्राद्ध-दिन, जन्मतिथि, श्रावण, व्रत-काल तथा विशेष दिन ये समय श्रेष्ठ मैथुन कर्म में निषिद्ध हैं।

१९०. सतयुग में कथन करके व्यक्ति पतित होता है, त्रेता में दर्शन से, द्वापर में अन्न ग्रहण करके, किन्तु कलियुग में कर्म से पतित होता है।

---

१. M... मयनारकाः. २. SmS ॰नादीनां ; M ॰पनद्यौना. ३. M om. ४-४. M श्राद्धभोजनतारका. ५. M च.

चतुर्दश्यष्टमी चैव ह्यमावस्या च पूर्णिमा।
[१]पर्वाण्येतानि विप्रेन्द्र[२] रविसङ्क्रान्तिरेव च॥१९१॥
[३]अर्थार्थं यानि कर्माणि करोति कृपणो जनः।
तान्येव यदि धर्मार्थं कुर्वन् को दुःखभाग्भवेत्॥१९२॥
[४]चैत्यवृक्षं चितिं यूपं[४] चण्डालं वेदविक्रयीम्[५]।
अज्ञानात् स्पृशते यस्तु सचेलो जलमाविशेत्॥१९३॥
इक्षूनपः फलं मूलं ताम्बूलं पय औषधम्।
[६]विक्रयित्वा तु कर्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः॥१९४॥
श्रुतिः स्मृतिर्ममैवाज्ञा यस्तामुल्लङ्घ्य वर्तते।
आज्ञाच्छेदी मम द्रोही मद्भक्तोऽपि[७] न वैष्णवः॥१९५॥
विष्णुना तु पुरा गीतमेवं तत्तु मयेरितम्॥१९६॥

१९१. चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा तथा सूर्य-संक्रान्ति ये सब हे विप्रेन्द्र, पर्व हैं।

१९२. कृपण जन अर्थ के लिये जिन कर्मों को करता है उन्हीं को यदि वह धर्मार्थ करे तो उन्हें करता हुआ कौन दुखी होवे ?

१९३. चैत्य-वृक्ष, चिति, यूप, चण्डाल, वेदविक्रेता इनको जो अज्ञानवश भी स्पर्श करता है वह वस्त्रसहित जल में प्रवेश करे।

१९४. ईख, जल, फल, मूल, ताम्बूल, दूध, औषधि इनको बेचने पर स्नान, दानादि क्रिया करे।

१९५-१९६. श्रुति, स्मृति मेरी ही आज्ञा हैं, इसलिये जो इनका उल्लंघन करके स्थित होता है वह मेरी आज्ञा का उल्लंघन करने वाला, मुझसे द्रोह करने वाला मेरा भक्त भी वैष्णव नहीं है। विष्णु के द्वारा यह पहले ही बताया गया है, वही मेरे द्वारा यहाँ कहा गया है।

---

१. SmS सर्वा°. २. M राजेन्द्र. ३. M °र्थे; SmS °र्थी. ४-४. SmS चैत्यवृक्षचितायूप (०यूपं). ५. M °विक्रयम्. ६. SmS वीक्षयित्वा°; M वीक्षयित्वापि. ७. M om अपि.

श्रुतिस्मृती तु विप्राणां चक्षुषी द्वे[१] विनिर्मिते।
काणस्तत्रैकया हीनो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्तितः ॥१९७॥
चर्मखण्डनभक्षाणां शुनाघ्रातमरोचकम्।
पापपूरितदेहानां धर्मशास्त्रमरोचकम् ॥१९८॥
अहेरिव रणाद् भीतः सन्मानान्मरणादिव।
कुणपादिव च स्त्रीभ्यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥१९९॥
शान्तं दान्तं जितक्रोधं जितात्मानं जितेन्द्रियम्।
तमग्र्यं ब्राह्मणं मन्ये शेषाः शूद्राः प्रकीर्तिताः ॥२००॥
ब्राह्मणस्य च देहोऽयं नोपभोगाय कल्पते।
इह क्लेशाय महते प्रेत्यानन्तसुखाय[२] च ॥२०१॥
दर्शे तिलोदकं दद्याच्छुष्कवासा जलाद्बहिः।
[३]आर्द्रवस्त्रो यदि तदा निराशाः [४]पितरो गताः ॥२०२॥

१९७. श्रुति और स्मृति ये ब्राह्मणों के दो नेत्र बताये गये हैं। इसलिये इनमें से यदि किसी एक से हीन है तो वह काण तथा दोनों से हीन है तो अन्धा ऐसा कहा गया है।

१९८. चर्म का टुकड़ा खाने वाले के लिए कुत्ते का सूंघना अरोचक है, उसी प्रकार पापकर्म भरे शरीर वाले के लिये धर्मशास्त्र अरोचक है।

१९९. जो युद्ध से उसी प्रकार भयभीत हो जैसे सर्प से, सन्मान से (उसी प्रकार भयभीत हो) जैसे मृत्यु से, स्त्रियों से (उसी प्रकार भयभीत हो) जैसे शव से, देवता उस को ब्राह्मण ऐसा जानते हैं।

२००. उस शान्त, दान्त, क्रोध को जीतने वाले, आत्मा को जीतने वाले तथा इन्द्रियों को जीतने वाले को (ही) अग्रगण्य ब्राह्मण मानता हूँ, शेष तो शूद्र ही कहे गये हैं।

२०१. ब्राह्मण का यह शरीर सुख-उपभोग के लिए नहीं बना है, यहाँ तो महान् क्लेश के लिए तथा मरने के बाद अनन्त सुख के लिये है।

२०२. अमावस्या के दिन सूखा वस्त्र पहनकर जल के बाहर तिलोदक देवे। यदि आर्द्र वस्त्र है तो निराश होकर (उसके) पितर लौट जाते हैं।

---

१. M ञ्चे. २. M °नन्दसु°. ३. M आद्र°. ४. M वीतरो°.

शिलातले पटे पत्रे रोमस्थानेषु कुत्रचित्।
ते तिलाः[1] कृमितुल्याः स्युस्तत्तोयं रुधिरं भवेत्॥२०३॥
[2]अङ्गुष्ठोदरमूले तु तिलान्निक्षिप्य तर्पयेत्।
ते तिला मेरुतुल्याः स्युस्तत्तोयं सागरोपमम्॥२०४॥
पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः।
श्राद्धं कृतं तेन समाः[3] सहस्रं रहस्यमेतत्पितरो वदन्ति॥२०५॥
[4]मासिके च[4] सपिण्डे[5] च प्रति संवत्सरे तथा।
व्यर्थं भवति तच्छ्राद्धं वासुदेवं विना कृतम्॥२०६॥
जपस्तपः श्राद्धकर्म स्वाध्यायादिकमेव च।
व्यर्थं भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम्॥२०७।
श्राद्धं कृत्वा परदिने न द्विजान् भोजयेद्यदि।
तच्छ्राद्धमासुरं लोके प्रवदन्ति विपश्चितः॥२०८॥

२०३. वे तिल जो शिलातल पर, पट पर, पत्र पर तथा रोम स्थानों पर कहीं भी गिरे हुए हों, कृमितुल्य हों तथा वह जल रुधिर हो।

२०४. अङ्गुष्ठ के अन्दर मूल में तिलों को रखकर तर्पण करे। ऐसे तिल मेरु के समान होवें तथा वह जल सागर के समान होवे।

२०५. पवित्र हुआ मनुष्य पितरों को पीने के लिये तिलों से मिला जल भी देवे तो उसके द्वारा किया (वह) श्राद्ध हजारों के समान है। यह रहस्य पितर बताते हैं।

२०६. मासिक में, सपिण्डी में, तथा प्रत्येक संवत्सर में किया हुआ वह श्राद्ध व्यर्थ होता है, जो वासुदेव (की पूजा) के बिना किया गया है।

२०७. जप, तप, श्राद्धकर्म, स्वाध्याय आदि सब व्यर्थ है, यदि वह ऊर्ध्वपुण्ड्र के बिना किया गया है।

२०८. श्राद्ध करके दूसरे दिन यदि ब्राह्मणों को भोजन नहीं कराया तो वह श्राद्ध लोक में आसुर है, ऐसा विद्वान् कहते हैं।

---

१. M तुलाः. २. M अवाष्टोदर°. ३. SmS समा. ४-४. M मा...तञ्च. ५. M सपिण्डौ.

श्राद्धं कृत्वा परदिने ब्राह्मणान्[1] भोजयेद्यदि।
देवाश्च पितरस्तुष्टाः कर्तुः कुर्वन्ति सम्पदः ॥२०९॥
श्राद्धे पाकमुपक्रम्य नान्दीश्राद्धं विवाहके।
व्रतं चरति सङ्कल्पे [2]सूतकेऽपि न दोषभाक्[2] ॥२१०॥
श्राद्धे तु विकिरं दत्त्वा नाचामेन्मतिविभ्रमात्।
पितरस्तस्य षण्मासं चाण्डालोच्छिष्टभोजनाः ॥२११॥
सहोदराणां पुत्राणां पितुरेकदिने तथा।
श्राद्धे निमन्त्रणं वर्ज्यं[3] क्षुरकर्म तथैव च ॥२१२॥
विधुरं च यतिं चैव सगोत्रं ब्रह्मचारिणम्।
देवार्थे[4] वरयेद्विद्वान् पित्रर्थे न कदाचन ॥२१३॥
वासांसि वाससी वासो यो ददाति पितुर्दिने।
स तु सङ्ख्यातवर्षेण देवलोके महीयते ॥२१४॥

२०९. श्राद्ध करके दूसरे दिन यदि ब्राह्मणों को भोजन कराता है तो देवता तथा पितर दोनों सन्तुष्ट होकर श्राद्ध करने वाले की सम्पदा बढ़ाते हैं।

२१०. श्राद्ध में पाक करके, विवाह में नान्दी श्राद्ध करके तथा संकल्प करके व्रत का आचरण करता है वह सूतक में भी दोष का भागी नहीं होता।

२११. श्राद्ध में विकिर (कुशाओं पर बिखेरा भोजन) देकर मति-विभ्रम के कारण आचमन नहीं करता तो उसके पितर ६ मास तक चाण्डालोच्छिष्टभोजी होवें।

२१२. सहोदर पुत्रों का तथा पिता का एक दिन श्राद्ध में निमन्त्रण वर्जित है, उसी प्रकार क्षौरकर्म भी।

२१३. विधुर, यति, सगोत्र तथा ब्रह्मचारी को विद्वान् देवकर्म के लिए वरण करे, पितृकर्म के लिये कभी भी इनका वरण न करे।

२१४. पिता के (श्राद्ध के) दिन जो व्यक्ति वस्त्रों को, दो वस्त्र अथवा एक वस्त्र देता है वह कुछ ही वर्षों में देवलोक में प्रतिष्ठित होता है।

---

१. M ब्राह्मणो. २-२. SmS सूतकं तु न दोषकृत्. ३. M वर्जं. ४. M देवार्थं.

[1]अभिश्रपणहीनं तु यः श्राद्धं कुरुते नरः।
तदन्नं मांससदृशं तद्रसं सुरया समम्॥२१५॥
[2]उदक्यायाः पतिं तावत्सूतिकायाः पतिं तथा।
भाण्डस्पर्शनपर्यन्तं पैतृके वर्जयेत्सुधीः॥२१६॥
विभक्ता भ्रातरः सर्वे स्वस्वार्जितधनाशनैः।
दर्शाब्दिकं तथा पित्रोः श्राद्धं कुर्यात् पृथक् पृथक्॥२१७॥
संन्यासी बहुभक्षश्च वैद्यो वैखानसस्तथा।
गर्भवान् वेदहीनश्च दानं श्राद्धं च वर्जयेत्॥२१८॥
स्नाने दाने जपे होमे स्वाध्याये पितृकर्मणि।
देवताराधने चैव त्याज्यदोषो न विद्यते॥२१९॥
प्रत्याब्दिके शतं जप्यं मासिके स्याद् द्विषट्शतम्।
सपिण्डे[3] त्रिसहस्रं स्याच्छ्राद्धे[4] त्रिंशत्सहस्रकम्॥२२०॥

२१५. जो व्यक्ति अभिश्रपण से रहित श्राद्ध करता है, वह अन्न माँस के समान होता है तथा वह रस सुरा के समान होता है।

२१६. रजस्वला के पति को तथा सूतिका के पति को भाण्डस्पर्शपर्यन्त पैतृक कार्य में विद्वान् वर्जित रखे।

२१७. सभी भाई यदि अलग-अलग हों तो अपने-अपने उपार्जित धन और भोजन से दर्श, सांवत्सरिक तथा पिता का श्राद्ध पृथक्-पृथक् करें।

२१८. संन्यासी, अधिक भोजन करने वाला, वैद्य, वैखानस, गर्भवती का पति तथा वेदहीन व्यक्ति दान तथा श्राद्ध (भोजन) का त्याग करे।

२१९. स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृकर्म तथ देवाराधन में त्याज्य दोष नहीं होता।

२२०. प्रत्येक वार्षिकी में एक सौ बार जप करे, मासिक में बारह सौ, सपिण्ड में तीन सहस्र और श्राद्ध में तीस हजार जप करे।

---

१. M, SmS °श्रवण°. २. M उदक्याः. ३. M सपिण्डौ. ४. SmS श्राद्धं.

मासिके पक्षमेकं स्यादाब्दिके च तदर्धकम्।
एकोद्दिष्टे वत्सरं स्यात् षाण्मासं तु सपिण्डने॥२२१॥
महालये त्रिरात्रं स्याच्छ्राद्धे त्वाकालिकं भवेत्॥२२२॥

श्राद्धान्नं तिलहोमं च दूरयात्रां प्रतिग्रहम्।
सिन्धुस्नानं गयाश्राद्धं वपनं शवधारणम्॥२२३॥
पर्वतारोहणं चैव गर्भकर्ता तु वर्जयेत्॥२२४॥

गर्भकर्ता तु यो विप्रः षण्मासाभ्यन्तरे यदि।
श्राद्धान्नादीनि कुर्वाणो क्षिप्रमेव विनश्यति॥२२५॥

मध्यन्दिने दृढाङ्गो यः स्नानं त्यक्त्वाऽर्चयेद्धरिम्।
वैश्वदेवं च यः कुर्यात्स गुल्मव्याधिपीडितः॥२२६॥

पितरस्तत्र मोदन्ते गायन्ते च पितामहाः।
प्रपितामहाश्च नृत्यन्ते श्रोत्रिये गृहमागते॥२२७॥

२२१-२२२. मासिक में एक पक्ष हो, वार्षिक में उसका आधा, एकोद्दिष्ट में एक वर्ष, सपिण्ड में ६ मास, महालय में तीन रात्रि हो तथा श्राद्ध में उसी समय।

२२३-२२४. श्राद्ध का भोजन, तिलहोम, दूरयात्रा, प्रतिग्रह, समुद्र-स्नान, गयाश्राद्ध, केशवपन, शवधारण तथा पर्वतारोहण गर्भकर्ता के लिये वर्जित हैं।

२२५. जो विप्र गर्भ धारण कराने वाला है वह यदि ६ मास के अन्दर श्राद्ध-भोजन आदि करता है तो शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

२२६. स्वस्थ अंगवाला व्यक्ति मध्य दिन में स्नान छोड़कर विष्णु की अर्चना करे तथा जो वैश्वदेव कर्म करे, वह प्लीहा व्याधि से पीड़ित होता है।

२२७. श्रोत्रिय ब्राह्मण के घर आने पर पितर वहां आनन्दित होते हैं, पितामह गाते हैं, तथा प्रपितामह नाचते हैं।

देशान्तरे दुरन्नानां प्रायश्चित्तद्वयं स्मृतम्।
[1]समुद्रगानदीस्नानं शिष्टागारेषु भोजनम्॥२२८॥
अनाचारस्य विप्रस्य पतितान्नं यतेस्तथा।
शूद्रान्नं विधवान्नं च [2]श्वमांससदृशं भवेत्॥२२९॥
यो मोहादथवाऽऽलस्यादकृत्वा[3] केशवार्चनम्।
भुङ्क्ते स याति नरकं श्वानयोनिषु जायते॥२३०॥
अनृतं मद्यगन्धं[4] च दिवास्वापं च मैथुनम्।
पुनाति वृषलस्यान्नं सायं सन्ध्या बहिःकृता॥२३१॥
स्नानं सन्ध्यां जपं होमं स्वाध्यायं पितृतर्पणम्।
देवताराधनं चैव वैश्वदेवं यथाविधि॥२३२॥
न कुर्याद्यदि मोहेन चण्डालो नात्र संशयः॥२३३॥

२२८. देशान्तर में दुष्ट अन्न खाने वालों के लिये दो प्रकार का प्रायश्चित्त कहा गया है— समुद्र की ओर जाने वाली नदी में स्नान तथा शिष्टागार में भोजन।

२२९. आचरणहीन विप्र का, पतित का अन्न, यति का, शूद्र का अन्न तथा विधवा का अन्न कुत्ते के मांस के समान होता है।

२३०. जो व्यक्ति मोहवश अथवा आलस्य से विष्णु का अर्चन किये बिना भोजन करता है, वह नरक में जाता है तथा कुत्ते की योनि में उत्पन्न होता है।

२३१. बाहर की गई सायंकालीन संध्या अनृत, मद्यगन्ध, दिवास्वप्न, मैथुन तथा पतित के अन्न (दोष) को पवित्र करती है।

२३२-२३३. स्नान, संध्या, जप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण, देवाराधन, तथा वैश्वदेव मोहवश जो व्यक्ति विधिपूर्वक नहीं करता वह चण्डाल है, इसमें संशय नहीं।

---

१. SmS समुद्रश्च नदी°. २. M स्वमांस°. ३. SmS स्यात् कृत्वा (श्री)केश° ४. M मेध्यगन्धं.

उत्तरप्रदेशस्थ-बलियाजनपदान्तर्गत-जवहींग्रामवास्तव्येन

माध्यन्दिनशुक्लयजुर्वेदशाखिना

विश्वामित्र-कात्य-उत्कील-त्रिप्रवरेण,

कात्यायनगोत्रोत्पन्नेन पं. सीतारामपौत्रेण

अंजोरिया-नारायणयोः कनिष्ठसूनुना

आचार्य व्रजबिहारी चौबे द्वारेण सम्पादिता

हिन्दीभाषानुवादेन च समलङ्कृता

वाधूलस्मृतिः

समाप्तिमगात्

ओम्

## नम ऋषिभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः
## नम आचार्येभ्यो धर्मसूत्रकृद्भ्यः

# 1. मन्त्रप्रतीकानुक्रमणिका ( सम्पूर्णपाठ सहित )

| मन्त्रप्रतीक | श्लोक | सम्पूर्ण मन्त्र |
| --- | --- | --- |
| अकार्यकार्य° | 89 | अकार्यकार्यवकीर्णी स्तेनो भ्रूणहा गुरुतल्पगः।<br>वरुणोऽपामघमर्षणस्तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥<br>(तैआ 10.1.89) |
| अत्याशनाद्° | 82 | अत्याशनादतीपानाद्यच्च उग्रात्प्रतिग्रहात्।<br>तन्नो वरुणो राजा पाणिना ह्यवमर्शतु ॥<br>सोऽहमपापो विरजो निर्मुक्तो मुक्तकिल्बिषः।<br>नाकस्य पृष्ठमारुह्य गच्छेद् ब्रह्मसलोकताम् ॥<br>(तैआ 10.1.78-79) |
| अयाश्च° | 160 | अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिश्च सत्यमित्त्वमया असि।<br>अयाः सन् मनसा कृत्तोऽयाः सन् हव्यमूहिषे-<br>ऽया नो धेहि भेषजं स्वाहा ॥ (मैसं 1.4.3) |
| आपो अस्मान्° | 85 | आपो अस्मान् मातरः शुन्धन्तु<br>घृतेन नो घृतपुवः पुनन्तु।<br>विश्वमस्मत्प्र वहन्तु रिप्रम् ॥ (तैसं 1.2.1.6) |
| आपो हि ष्ठा° | 86,120,123 | आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन<br>महे रणाय चक्षसे ॥<br>यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।<br>उशतीरिव मातरः ॥<br>तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।<br>आपो जनयथा च नः ॥<br>(तैसं 4.1.5.2-4; तैआ 10.1.71-73) |

| | | |
|---|---|---|
| आर्द्रं ज्वलति° | 89 | आर्द्रं ज्वलति ज्योतिरहमस्मि।<br>ज्योतिर्ज्वलति ब्रह्माहमस्मि।<br>योऽहमस्मि ब्रह्माहमस्मि।<br>अहमस्मि ब्रह्माहमस्मि।<br>अहमेवाहं मां जुहोमि॥ (तैआ 10.1.88) |
| इमं मे गङ्गे° | 85 | इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति<br>शुतद्रि स्तोमं सचता परुष्णिया।<br>असिक्निया मरुद्वृधे वितस्तया-<br>ऽऽर्जिकीये शृणुह्या सुषोमया॥<br>(तैआ 10.1.81) |
| उद्भेदभि° | 134 | ? |
| ऊर्जं वहन्ती° | 92 | ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिश्रुतम्।<br>स्वधा स्था तर्पयत मे पितॄन्॥ (वासं 2.34) |
| एष भूतस्य° | 88 | पुनन्तु वसवः पुनातु वरुणः पुनात्वघमर्षणः।<br>एष भूतस्य मध्ये भुवनस्य गोप्ता॥<br>(तैआ 10.1.86) |
| तद्विष्णोः° | 90,91 | तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।<br>दिवीव चक्षुराततम् ॥<br>(तैसं 1.3.6.2) |
| तृप्यत° | 92 | तृप्यत तृप्यत तृप्यत॥<br>(आप मंपा 2.20.23) |
| दधिक्राव्ण° | 125 | दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः<br>सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूꣳषि तारिषत्॥<br>(तैसं 1.5.11.11.) |
| दुर्मित्राः° | 79 | दुर्मित्रास्तस्मै भूयासुर्योऽस्मान् द्वेष्टि।<br>(तैसं 1.4.45.7; तैआ 10.1.70) |
| न तस्य° | 135 | नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत्।<br>न तस्येशे कश्चन तस्य नाम महद्यशः॥<br>(तैआ 10.1.10) |

## 2. श्लोकानुक्रमणिका

*( श्लोक-प्रतीक के आगे दी गई संख्या श्लोक-संख्या का निर्देश करती है )*

# 3. पदानुक्रमणिका

*( पदों के आगे दी गई संख्या श्लोक-संख्या का निर्देश करती है )*

## अ

### ग

## द

### ध



### न

वाधूलस्मृतिः

## श



## ष



## स

### ह

## आचार्य व्रजबिहारी चौबे द्वारा रचित/सम्पादित ग्रन्थ

1. द न्यू वैदिक सेलेक्शन, भाग 1, 2
2. ट्रीटमेण्ट ऑव् नेचर इन द ऋग्वेद
3. वैदिक वाङ्मयः एक अनुशीलन
4. वैदिक स्वरित मीमांसा
5. वैदिक स्वर बोध
6. भाषिकसूत्रम् (महास्वामी तथा अनन्तभट्टकृतभाष्यद्वययुक्त) [सम्पा]
7. ऋग्वेद प्रातिशाख्य (हिन्दी-व्याख्यायुक्त, पटल 1-4)
8. विश्वामित्र इन वैदिक एण्ड पोस्ट वैदिक लिटरेचर - [सम्पा.]
9. वाधूलश्रौतसूत्रम् [सम्पा.]
10. आश्वलायश्रौतसूत्रम् (देवत्रातभाष्यसहित्) भाग 2, 3 [सम्पा.]
11. वैदिक कन्सेप्ट्स
12. संस्कृत-वाङ्मय का बृहद् इतिहास, भाग-1 (वेदखण्ड) [सम्पा.]
13. वाधूल-अन्वाख्यानम् [सम्पा.]
14. वाधूल-स्मृति (हिन्दीभाषानुवादसहित)
15. वाधूलगृह्यागमवृत्तिरहस्य [सम्पा.]
16. वाधूलश्रौतसूत्रव्याख्या (आचार्य आर्यदासप्रणीत) [सम्पा.]

**पुस्तक प्राप्ति-स्थान**

**कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन**

**गौतमनगर, जोधामल रोड़, होशियारपुर (पंजाब)**